॥ ओ३म् ॥

आर्यसमाज :

क्या ? और क्यों ?

(एक परिचय)

लेखक

प्रो० राजेन्द्र 'जिज्ञासु'

विजयकुमार गोविन्दराम हासानन्द

सर्वाधिकार सुरक्षित

© गोविन्दराम हासानन्द

पुस्तक से कोई उद्धरण लेने या अनुवाद करने के लिए प्रकाशक की अनुमति अनिवार्य है।

प्रकाशक : **विजयकुमार गोविन्दराम हासानन्द**
4408, नई सड़क, दिल्ली-110 006
दूरभाष : 23977216, 65360255
e-mail : ajayarya16@gmail.com
Website : www.vedicbooks.com

वैदिक-ज्ञान-प्रकाश का गरिमापूर्ण 90वाँ वर्ष (1925-2015)

संस्करण : 2015

मूल्य : ₹ 15.00

मुद्रक : नवशक्ति प्रिंटर्स, दिल्ली-110 032

AN INTRODUCTION TO THE ARYASAMAJ
by Prof. Rajendra 'Jigyasu'

॥ ओ३म् ॥

प्राक्कथन

श्री अजयकुमार जी सञ्चालक विजयकुमार गोविन्दराम हासानन्द ने एक पुस्तक लिखने की इच्छा व्यक्त की तो मैंने तत्काल इस कार्य के लिए उन्हें स्वीकृति दे दी। मैंने इस विषय पर लिखी गई हिन्दी, उर्दू व अंग्रेज़ी की प्राय: सभी छोटी-बड़ी पुस्तकें पढ़ी हैं । नि:सन्देह पूज्य महात्मा नारायण स्वामी जी, श्रद्धेय पं० गंगाप्रसाद जी उपाध्याय व पं० शान्तिप्रकाश जी लिखित पुस्तकें लोकप्रिय, उपयोगी व उत्तम थीं ।

मेरे लिए कठिनाई यह नहीं थी कि क्या लिखूं ? कठिनाई तो यह रही कि क्या छोड़ूं और क्या न लिखूं ? अपनी समस्या को सरल बनाने के लिए प्रकाशक से पूछा कि आप इसमें क्या-क्या चाहते हैं ? उनके विचार मेरे से मिलते जुलते ही थे । विषय व्यापक है और सामग्री मेरे पास पर्याप्त है । जैसे तैसे करके सामग्री को सिकोड़ कर, कांट-छांट करके इस पुस्तक आर्यसमाज क्या ? और क्यों ? को पाठकों की भेंट करते हुए मुझे बड़ा हर्ष हो रहा है ।

पुस्तक का आकार छोटा है । प्रकाशक व लेखक की कुछ सीमाएँ हैं अत: पाठक अपनी-अपनी रुचि के अनुसार इसमें आर्यसमाज की विचार-धारा व इतिहास-विषयक कई बातें नहीं पायेंगे । मेरी इच्छा यह है कि इसका दूसरा संस्करण इससे कहीं बड़ा तैयार करके पाठकों को तृप्त किया जाये। इतनी छोटी पुस्तक में सब कुछ लिख पाना सम्भव ही नहीं था तथापि जिस उद्देश्य से इसे लिखा गया है वह अवश्य पूरा होगा । ऐसी मुझे आशा और विश्वास है ।

पाठक इस नन्हीं पुस्तक के प्रसार में सक्रिय सहयोगी बनेंगे, यह दृढ़ विश्वास है ।

गुरुकुल होशंगाबाद में इसे लिखना आरम्भ किया था और अबोहर में इसे पूरा किया है ।

स्वामी श्रद्धानन्द बलिदान पर्व
सन् २००० ई०

विनीत :
प्रो० राजेन्द्र 'जिज्ञासु'
वेदसदन, अबोहर-१५२११६

विषय सूची

अध्याय	पृष्ठ
पहला अध्याय : आर्यसमाज के सिद्धान्त व उद्देश्य	५
दूसरा अध्याय : संस्थापक का संक्षिप्त जीवन-परिचय	१२
तीसरा अध्याय : जीवन-दर्शन	२३
चौथा अध्याय : ईश्वर और उसकी उपासना	३२
पाँचवाँ अध्याय : आहार, संस्कार और व्यवहार	३८
छठा अध्याय : आर्यसमाज के कुछ हुतात्मा	४०
सातवाँ अध्याय : जनजागरण को आर्यसमाज की देन	४७
आठवाँ अध्याय : विदेशों में आर्यसमाज	५६

पहला अध्याय

आर्यसमाज के सिद्धान्त व उद्देश्य

आर्यसमाज एक विख्यात धार्मिक संस्था का नाम है। आधुनिक विश्व के इतिहास में इस संस्था ने जन-जागरण व जन-कल्याण के अद्‌भुत कार्य करके एक इतिहास बनाया है। इसकी स्थापना अप्रैल १८७५ में भारत के महानगर मुम्बई में की गई । इसकी स्थापना तिथि के बारे में कुछ लोगों में मतभेद है । प्रचलित मत तो यह है कि महर्षि दयानन्द जी महाराज ने विक्रमी संवत् के प्रथम दिवस को राष्ट्रीय दृष्टि से एक महत्त्वपूर्ण पर्व मानते हुए चैत्र प्रतिपदा संवत् १८३२ को स्थापित किया। सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा ने इसी तिथि को आर्यसमाज का स्थापना-दिवस घोषित कर रखा है। आर्यसमाज मुम्बई में उस काल के एक लेखानुसार यही तिथि मान्य होती है परन्तु महर्षि दयानन्द के एक पत्र के अनुसार चैत्र सुदी ५ संवत् १९३२ तदनुसार दस अप्रैल १८७५ ई० को आर्यसमाज की स्थापना की गई ।

हमारे विचार में इस तिथि को लेकर विवाद खड़ा करना व्यर्थ है । हम इसे एक निरर्थक बौद्धिक व्यायाम मानते हैं । हमारे लिए और समस्त संसार के लिए महत्त्व किसी विशेष दिन का नहीं, महत्त्व तो उद्देश्य का है, भावना का है और उस उमंग तरंग का है जिसे लेकर इसके निर्माता ऋषि दयानन्द

जी ने इस संस्था को स्थापित किया ।

जो इतिहासकार यह जानते व मानते हैं कि आर्यसमाज का प्रभाव भारत पर ही पड़ा या भारत तक ही सीमित है, वे एक महाभयंकर भूल करते हैं । कोई जाने या न जाने, कोई माने या न माने परन्तु हम तो यह कहेंगे–

"The Arya Samaj is just like the earth's gravitation which, though invisible and imperceptible, pervades all activities and effects all movements "[1]

अर्थात् आर्यसमाज तो भूमि के गुरुत्व आकर्षण के समान है, जो है तो अदृश्य व अगोचर परन्तु सब गतियों में ओतप्रोत है और सब क्रियाकलापों को प्रभावित करता है ।

आर्यसमाज ने भी अपने जीवन के प्रथम ७५ वर्षों में अपनें लक्ष्य की पूर्ति के लिए जी जान से, एक के बाद दूसरा व दूसरे के पश्चात् तीसरा बलिदान देकर ऐसे ऐसे कार्य कर दिखाये कि विश्व का कोई भी ग्रन्थ व पन्थ इसके प्रभाव से अछूता न रह सका । अपने इस कथन की पुष्टि में कहीं अन्यत्र इस पर कुछ विस्तार से सप्रमाण प्रकाश डालेंगे ।

आर्यसमाज एक सज्जन संघ–

आर्यसमाज के नियमों, मन्तव्यों व आर्यसमाज के संस्थापक के जीवनचरित का अवलोकन करने से यह पता चलता है कि महर्षि दयानन्द ने इसे एक सज्जन संघ के रूप में स्थापित किया । संसार में आस्तिक्य भाव को फैलाने के लिए ऋषि ने

1. The Origin, Scope and Mission of the Arya Samaj
लेखक पं० गंगाप्रसाद जी उपाध्याय

इस आन्दोलन को जन्म दिया था । आर्यसमाज के प्रथम तीन नियमों पर दृष्टि डालने से यह सुस्पष्ट हो जाता है कि ईश्वर का विश्वास, उसकी उपासना व ईश्वर का नित्य अनादि वेद ज्ञान ही उस आजन्म ब्रह्मचारी यति योगी का सर्वस्व था ।

तनिक 'आर्यसमाज' इस संस्था के नाम के इन दो शब्दों पर विचार कीजिये । समाज शब्द का अर्थ सब जानते हैं । मनुष्यों के समूह का नाम है समाज और आर्य शब्द का सर्वविदित अर्थ है 'श्रेष्ठ पुरुष' । अंग्रेज़ी के शब्द कोष के अनुसार आर्य का अर्थ है Gentleman और अंग्रेज़ी के प्रसिद्ध लेखक एमर्सन ने भी आर्य शब्द की व्याख्या करते हुए Gentleman सज्जनपुरुष को ही इसका पर्याय बताया है । 'आर्य' शब्द का रंग, रूप, खोपड़ी अथवा नाक की बनावट से कुछ भी लेना देना नहीं । इस शब्द को भूगोल के सीमा में भी जकड़ा नहीं जा सकता । किसी भी देश के भले, श्रेष्ठ व सज्जन निवासी 'आर्य' कहला सकते हैं ।

कई गुणियों, विद्वानों व विचारकों ने आर्य शब्द की परिभाषा व व्याख्या लिखी है परन्तु हमें श्री अरविन्द घोष जी की आर्य शब्द की व्याख्या बेजोड़ लगी है । उन्होंने लिखा है–

"The Arya is he who strives and overcomes all outside him or within him that stand opposed to the human advance.

In everything, he seeks truth, in every thing right, and freedom".[1]

अर्थात् आर्य वह है जो भीतर व बाहर की प्रत्येक बुराई

---

१. 'Arya' volume I, P. 61 श्री रघुनाथप्रसाद पाठक की पुस्तिका 'आर्य शब्द का महत्त्व' से उद्धृत ।

से लड़ाई करके उस पर विजय पाता है। मानव की उन्नति में बाधक प्रत्येक बाधा से वह जूझता है। वह सर्वत्र सत्य, औचित्य व स्वतन्त्रता की खोज करता है।

आर्य अटल ईश्वरविश्वासी, परोपकारी, सर्व- हितकारी, आशावादी व पुरुषार्थी होता है। वह अर्थार्थी, स्वार्थी, प्रमादी व भीरु नहीं हो सकता। भयमुक्त व्यक्ति ही स्वतन्त्र हो सकता है। भयमुक्त होने के लिए अटल ईश्वरविश्वास व त्याग चाहिए।

जब आर्यसमाज की स्थापना की गई, उसी वर्ष सर सैयद अहमद खाँ ने अपने अलीगढ़ कालेज की स्थापना की। स्थापना के दिन अलग-अलग थे। ध्यान देने योग्य बात यह है कि अलीगढ़ कालेज की स्थापना के लिए महारानी विक्टोरिया का जन्मदिवस उपयुक्त समझा गया। लाभ इसी में था। आर्यसमाज के संस्थापक ने लाभ व लोभ की अजगर सम लहरों को चीर कर चैत्र मास का एक दिन चुन लिया। उनका आत्मा ईश्वर की इच्छा को सर्वोपरि मानता था। मानवीय राजा से उन्हें डरने की आवश्यकता ही नहीं थी।

आर्यसमाज के दस नियम हैं जो इस प्रकार से हैं–

१–सब सत्यविद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं उन सब क़ा आदि मूल परमेश्वर है।

२–ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्यपवित्र और सृष्टिकर्ता है। उसी की उपासना करनी योग्य है।

३–वेद सब सत्यविद्याओं का पुस्तक है। वेद का

पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है ।

४-सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए ।

५-सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य को विचार करके करने चाहिए ।

६-संसार का उपकार करना आर्यसमाज का मुख्य उद्देश्य है, अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना ।

७-सब से प्रीतिपूर्वक, धर्मानुसार यथायोग्य बर्तना चाहिए ।

८-अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिए ।

९-प्रत्येक को अपनी ही उन्नति में सन्तुष्ट न रहना चाहिए, किन्तु सबकी उन्नति में ही अपनी उन्नति समझनी चाहिए ।

१०-सब मनुष्यों को सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिए और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र रहें ।

इन नियमों का एक-एक शब्द ऋषि दयानन्द के गम्भीर ज्ञान व चिन्तन का पता देता है । प्रथम तीन नियमों से पता चलता है कि यह संस्था आस्तिकवादी, एकेश्वर-वादी व ईश्वर के नित्य अनादि ज्ञान को मानने वाले लोगों का धार्मिक संगठन है । आर्यसमाज के प्रथम पांच नियमों में सत्य शब्द आया है । इसके संस्थापक की दृष्टि में सत्य

व न्याय ये मनुष्यपन की आधारशिला हैं । सत्य पर ऋषि दयानन्द ने बड़ा बल दिया है । आर्यसमाज की विचार-धारा के अनुसार सत्य को जानना व मानना ही आवश्यक नहीं, इसको जीवन में लाना अत्यावश्यक है । आर्यसमाज का चौथा नियम सदाचरण पर बड़ा बल देता है । उस धर्म का क्या लाभ जिस से व्यक्ति व समाज का सुधार न हो ? आर्यसमाज बुद्धि पर ताला लगाकर किसी को धार्मिक नहीं बनाता । बुद्धि भी ईश्वर की ही देन है । वेद में तो एक सूक्त का नाम ही मेधा सूक्त है । आर्यसमाज सब कार्य बुद्धिपूर्वक सोच विचार कर करने की प्रेरणा करता है । अन्धविश्वास का नाम श्रद्धा नहीं है । अन्ध श्रद्धा को आर्यसमाज धर्म का अंग नहीं मानता । आर्यसमाज का चौथा नियम इस बात का प्रमाण है ।

आर्यसमाज के शेष पांच नियम व्यक्ति के सामाजिक कर्त्तव्यों का बोध करवाते हैं । जिस समाज में हम रहते हैं, उसके प्रति हमारे कुछ कर्त्तव्य हैं । समाज में हम कैसे जीवन बितायें, हमारा परस्पर का व्यवहार कैसा हो ? यह इन पांच नियमों में बताया गया है । आर्य-सामाजिक विचारधारा न तो व्यक्तिवाद को मानती है और न समाज को इतना महत्व देती है कि व्यक्ति के हितों की हत्या हो जाये। व्यक्तिगत उन्नति के बिना सामाजिक उन्नति सम्भव नहीं और अच्छे उन्नत समाज के बिना व्यक्ति का विकास सम्भव नहीं ।

ईश्वर के स्वरूप, ईशोपासना, जीव व ईश्वर के

सम्बन्ध व ईश्वरीय ज्ञान की चर्चा के साथ व्यक्ति का व्यक्ति से कैसा व्यवहार हो और व्यक्ति का समाज से सम्बन्ध कैसा हो, इन बातों को अपने नियमों में महत्त्वपूर्ण स्थान देने वाला विश्व का सर्वप्रथम धार्मिक संगठन आर्यसमाज ही है। इसे आप इसके संस्थापक का मौलिक चिन्तन कहें अथवा आर्यसमाज की विलक्षणता समझें।

संसार में ऐसा कोई दूसरा धार्मिक संगठन नहीं मिलेगा जिसके नियमों में ईश्वर के स्वरूप, उसके गुण, कर्म व स्वभाव का इतना सुन्दर व स्पष्ट वर्णन किया गया हो। **"उसी की उपासना करनी योग्य है।"** यह घोष लगाने वाला ऋषि दयानन्द सचमुच एक निराला महापुरुष था। आर्यसमाज की मान्यता है कि ईश्वर के इतर जड़, स्थल, मनुष्य, पशु, पक्षी, नदी, पर्वत व चांद-सूरज, सितारों सब की पूजा पाप है। आर्यसमाज ईश्वरेतर सब प्रकार की पूजा का घोर विरोधी रहा है। इस कारण व्यक्ति-पूजा, जड़-पूजा व नदी, वृक्ष आदि की पूजा में आस्था रखने वालों ने आर्यसमाज का सदा ही विरोध किया है।

आर्यसमाज की मान्यता है कि मनुष्य यदि ईश्वर को सर्वव्यापक, सर्वज्ञ व सर्वद्रष्टा मानकर अपना व्यवहार करें तो संसार से पाप, ताप सब दूर हो जायें और धरती स्वर्गधाम बन जाये परन्तु मनुष्य का दुर्भाग्य ही यही है कि इस कम्प्यूटर युग में भी लोग ईश्वर को अपने हृदय में न मानकर अन्य-अन्य दूरस्थ स्थानों पर मानते हैं और उन स्थानों की जिन्हें वे तीर्थ कहते हैं-यात्राओं में समय,

धन व शक्ति का अपव्यय करते हैं । इससे अन्धविश्वास को भी प्रोत्साहन मिलता है ।

आर्यसमाज प्राचीन ऋषियों की इस मान्यता में अटल आस्था रखता है कि जिस प्रभु ने सृष्टि रचकर जीवों को सब कुछ दिया उसने सब पदार्थों के उपयोग प्रयोग व आत्मोन्नति के लिए अपना नित्य अनादि ज्ञान वेद भी सृष्टि के आदि में चार ऋषियों द्वारा दिया । भाषा का आविर्भाव भी परमात्मा द्वारा सृष्टि के आदि में हुआ । कुरान व बाइबल भी इस तथ्य की साक्षी देते हैं कि कभी सृष्टि की एक ही भाषा थी ।

***

दूसरा अध्याय

संस्थापक का संक्षिप्त जीवन-परिचय

आर्यसमाज के संस्थापक स्वामी दयानन्द का जन्म विक्रम संवत् १८८१ (१८२४ ई०) में मोर्वी राज्य (गुजरात) के टंकारा कस्बा में हुआ । उनकी निश्चित जन्मतिथि का किसी को पता नहीं है । उनका बचपन का नाम मूलशंकर था । उनके पिता श्री करसन जी एक सम्पन्न ब्राह्मण थे । वे भूपति और राज्य के एक प्रतिष्ठित अधिकारी थे । वे शैव मत अनुयायी थे । मूल जी को कुलपरम्परा के अनुसार शैव मत के विचार संस्कार दिये गये । घर पर संस्कृत के पठन-पाठन व वेदाध्ययन की भी व्यवस्था की गई । बालक मूलशंकर की धर्म, कर्म

में असाधारण रुचि थी ।

शैव लोग शिवरात्रि को उपवास रखते व जागरण करते हैं । उनकी ऐसी मान्यता है कि इस रात शिव जी अपने भक्तों को दर्शन देते हैं । करसन जी के प्रबल अनुरोध पर मूल जी ने भी शिव-दर्शन की चाह से सोत्साह शिवरात्रि का व्रत रखा और मन्दिर में जागरण व पूजापाठ में सम्मिलित हुए । हुआ यह कि सब भक्तजन-मूल जी के पिता सहित ऊंघते-ऊंघते सो गए । सारे मन्दिर में अकेला मूलशंकर ही शिव जी के प्रकट होने की प्रतीक्षा के लिए जागता रहा । सारे मन्दिर में मट्टी का एक नन्हा दीपक ही मूल जी का साथ निभा रहा था । अन्धेरी रात में जब भक्तजन गहरी नींद में सो रहे थे तभी एक चूहा बिल से निकला और दुस्साहस करके शिवलिङ्ग पर चढ़ाये गये प्रसाद को खाने के लिए शिवपिण्डी पर चढ़ कर उछलकूद करने लगा ।

मूलशंकर चूहे की उच्छृङ्खलता देखकर दंग रह गया। हिन्दू लोग चूहे को गणेश जी का वाहन मानते हैं । हा! यह क्या ? पुत्र के वाहन ने आज पिता की सवारी कर ली । इस छोटी सी घटना ने मूल जी के मन में 'हलचल' सी मचा दी । किसी ने यथार्थ ही तो कहा है-

"Little things are great for the great men and great things are little for the little men."

अर्थात् छोटी-छोटी बातें बड़े लोगों के लिए महान् होती हैं और महान् घटनाएँ या बड़ी-बड़ी बातें छोटे मनुष्यों के लिए छोटी होती हैं । बालक मूलशंकर शिवरात्रि की

घटना के समय मात्र १३ वर्ष का था। इस घटना ने उसे झकझोर कर रख दिया । उस के मन में शंका उठी कि यह जगत् का रचयिता शिव नहीं। यह तो केवल एक निर्जीव पाषाण मूर्ति है जो अपने ऊपर से इस ढीठ चूहे को भी नहीं हटा सकती ।

मुस्लिम जगत् के सर्वमान्य नेता व कुरान के एक भाष्यकार सर सय्यद अहमद ने लिखा है कि मूलशंकर के मन में जगा यह सद्विचार इल्हाम (ईश्वरी ज्ञान) नहीं तो फिर क्या था ? मूल जी ने पिता को जगाया । अपनी शंका का समाधान चाहा परन्तु वह जिज्ञासु पुत्र को सन्तुष्ट न कर सके । मूल जी ने घर जाकर व्रत तोड़ दिया । अब उनके मन में सच्चे शिव की खोज की ललक जाग उठी।

कुछ समय के पश्चात् परिवार में दो और घटनाएँ घटीं । कुछ अन्तर से मूल जी के चाचा व प्यारी भगिनी की मृत्यु हो गई । अब मूल बहुत उदास रहने लगा । मरना सब को है । मुझे भी एक दिन मरना है । मृत्यु पर कैसे विजय पाई जाये । इतिहास अपने आपको दोहराता है । महात्मा बुद्ध के समान मूलशंकर भी इन प्रश्नों को लेकर सोच में डूबा रहता । वह मौत पर विजय पाने के लिए छटपटाने लगा । माता-पिता पुत्र की उदासी देख- देखकर आकुल व्याकुल हो उठे । उन्होंने जवान बेटे का विवाह करके उसे प्रेमपाश में बांधना चाहा। मूलशंकर ने इस मोह बन्धन में न पड़ने की ठान ली ।

कौन जगत् के सकल प्रलोभन तजकर निकला?।
और कठिन संघर्ष बीच जो उड़ना सीखा ॥

गृह-त्याग-

एक रात्रि अवसर पाकर मूल जी घर से चुपचाप निकल गये । पिता ने अपने व्यक्ति पीछे दौड़ाये । अन्ततः उन्होंने उसे सिद्धपुर में जा पकड़ा। मूल जी कड़े पहरे में से किसी प्रकार फिर भाग निकले और फिर परिवार वालों की पकड़ में नहीं आये ।

सत्य की खोज में-

काषाय वस्त्र धारण करके मूल जी यहां वहां साधुओं-योगियों का पता लगाकर सद्ज्ञान प्राप्ति की खोज में भटकते रहे । सब प्रकार के दुःख कष्ट झेले। पहले शुद्ध चैतन्य बने फिर पूरे संन्यासी बनकर नामी दयानन्द नाम पाया । हरिद्वार के कुम्भ मेले में गये । नदियों को चीरा । वनों में योगियों की खोज की । पर्वतों की गुफाओं को छाना परन्तु प्यास न बुझी । इस प्रकार पन्द्रह वर्ष बीत गये । इतने लम्बे समय के पश्चात् वह मथुरा नगरी में प्रज्ञाचक्षु दण्डी विरजानन्द के द्वार पर आए ।

दण्डी की कुटिया का द्वार खटखटाया-

दण्डी विरजानन्द संसार के व्यवहार से खिन्न थे। दयानन्द की अनुनय विनय से उनका कोमल हृदय पिघला। कुटिया का द्वार खोला । उन्हें पढ़ाना स्वीकार किया । पूछा, क्या-क्या पढ़ा है । दयानन्द ने जब ग्रन्थों के नाम गिनाये तो कहा कि ये सब जाल ग्रन्थ हैं । अनार्ष हैं । ये आर्य धर्म, दर्शन व सभ्यता पर कलंक का टीका हैं । जाओ!

पहले इन्हें यमुना में बहा दो । दयानन्द ने अविलम्ब गुरु की आज्ञा का पालन किया । कोई ढाई तीन वर्ष तक यहां रहकर वेद व आर्ष ग्रन्थों का, विशेष रूप से व्याकरण महाभाष्य का अध्ययन किया । सकल संशयों का निवारण किया ।

गुरु-दक्षिणा व गुरु से दीक्षा-

दयानन्द भारतीय परम्परा के अनुसार जी जान से गुरु की सेवा करते थे । गुरु की कुटिया में झाड़ू देते । गुरु जी के स्नान के लिए यमुना से शुद्ध शीतल जल भी लाते । गुरु भी तो कोई साधारण व्यक्ति नहीं थे ।

"Though he himself was physically blind, he opened the eyes of his devoted pupil". यद्यपि वे आप नेत्रहीन थे फिर भी अपने निष्ठावान् शिष्य की आंखें उस प्रज्ञाचक्षु ने खोल दीं । दण्डी विरजानन्द ने अपने सीने का समस्त ज्ञानकोश दयानन्द को सौंप दिया और अब तीन वर्ष के पश्चात् उसने जब गुरु जी से विदाई चाही तो परम्परा के अनुसार गुरु जी को भेंट देनी चाही । गुरु जी को लवंग बहुत प्रिय थे । दयानन्द लवंगों की थाली लेकर गुरु-चरणों में उपस्थित हुए तो गुरु जी के हृदय के भावों का बांध टूट गया । मनोवेदना को प्रकट करते हुए दण्डी गुरु बोले- संसार प्रभु की कल्याणी वाणी वेद को विसार चुका है। जड़ मूर्तियों ने जीवनदाता जीवित प्रभु का स्थान ले लिया है । देश, जाति व मनुष्यता की दुर्दशा देखो ।

मिटा भेद वेदों की घुट्टी पिला दे ।
गंवा जान अपनी मनुज को जिला दे ॥

पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय जी के शब्दों में यह एक भयानक भेंट थी जो गुरु ने मांग ली परन्तु शिष्य ने शीश नवाकर गुरु-आज्ञा को शिरोधार्य किया । आचार्य चमूपति के शब्दों में गुरु शिष्य का यह संवाद सुनकर कुटी हिल गई । मौन स्वरों में यह गान सुनाई दिया–

ऋषि-ऋण का जिसने फ़ना मूल डाला ।
दयानन्द स्वामी ! तिरा बोल बोला ॥

शीश तली पर धरकर–

ऋषि कार्यक्षेत्र में उतरे । जब प्रभु के नित्य अनादि ज्ञान वेद का सन्देशा सुनाया तो पोंगापन्थियों ने यह दुष्प्रचार किया कि वेद तो कभी के लुप्त हो चुके हैं । सच्चिदानन्द भगवान् के स्थान पर स्वर्ण (Gold rather than God) की पूजा हो रही थी । ऋषि पर तलवार कटार के वार किये गये । उन पर जीवित काला नाग फेंका गया । उन्हें गंगा में भी फेंका गया। कुटिया को आग लगाई गई । उनकी टांग तोड़ने के लिए प्रहार किया गया । विष के प्याले पिलाये गये । मृत्युञ्जय दयानन्द अडिग व अकम्प रहे । मैडेम ब्लेवेट्स्की व नास्तिक पं० मोतीलाल नेहरू उन पर किये आक्रमणों के साक्षी रहे ।

साहस व शौर्य की मूर्ति–

काशी भारत में विद्या व धर्म की नगरी रहा है ।

ऋषि ने सत्य व असत्य के निर्णय के लिए काशी पर चढ़ाई की । काशी के पण्डितों को ललकारा कि दिखाओ ! वेद में कहां प्रतिमा-पूजन का विधान है। काशी के राजा ईश्वरी नारायणसिंह से कहा, आप अपने पण्डितों से मेरा शास्त्रार्थ करवाकर सत्य वेद विद्या के प्रकाश को फैलाने में सहायक बनें । ऋषि से पहले कभी भी किसी ने काशी को चुनौती देने का साहस नहीं किया था । १६ नवम्बर, १८६९ ई० मंगलवार के दिन काशी में महाराजा की अध्यक्षता में एक ऐतिहासिक शास्त्रार्थ का आयोजन किया गया। "It reminds one of the meeting at Worms of Martin Luther and learned representatives of the Pope of Rome on this very point of idolatory, with of course, one difference. At Worms Martin Luther was called by warrants to clear his position before the learned judges of Christendom. Here Swami Dayananda had gone on his own accord to face the lion in his den and to bend him to the knees."[1]

अर्थात् काशी का यह शास्त्रार्थ इसी प्रतिमा- पूजन विषय पर मार्टिन लूथर व रोम के पोप के सुयोग्य विद्वान् प्रतिनिधियों के मध्य हुई वर्मज़ की बैठक का स्मरण करवाता है, दोनों में निश्चय ही एक अन्तर यह है कि वर्मज़ में ईसाइयत के न्यायाधीशों द्वारा मार्टिन लूथर को बुलवाया गया था और यहाँ स्वामी दयानन्द स्वेच्छा से सिंह की गुफा में उसका सामना करने गये और उसे घुटने टेकने पर विवश कर दिया । उन्होंने एक नहीं सात बार काशी

1. Philosophy of Dayananda Para 18.

जाकर काशी के मूर्तिपूजक पण्डितों को शास्त्रार्थ के लिए ललकारा ।

काशी वालों ने षड्यन्त्र रचकर उस दिन ऋषि के प्राण लेने चाहे परन्तु रघुनाथ कोतवाल की कर्त्तव्यनिष्ठा व चौकसी से उस दिन महाराज की प्राणहानि न हुई । उस दिन दोनों पक्षों की जीत हुई। काशी के पण्डित वर्ग ने हू हू करके हुल्लड़ मचाने में तो जीत प्राप्त की ही साथ ही वे चाहते थे कि काशी के लोग ऋषि की सत्य वाणी को न सुनें । इस में उन्हें अच्छी सफलता मिली । ऋषि ने कहा था, दिखाओ ! वेद में पाषाण–पूजा का कोई प्रमाण। काशी के विद्वान् वेद से प्रतिमा–पूजन का एक भी प्रमाण न दे सके । इस में ऋषि की जीत हुई ।

दलीलों पै काशी को जिसने उछाला ।
दयानन्द स्वामी ! तिरा बोलबाला ॥

१८७७ ई० में ऋषि कबीरपंथियों की प्रेरणा से चाँदापुर के मेले पर ईसाइयों व मुसलमानों से पाँच विषयों पर शास्त्रार्थ करने के विचार से गये परन्तु अभी दो ही विषयों पर शास्त्रार्थ हो पाया था कि पादरी व मौलवी यह प्रचार करके चले गये कि मेला समाप्त हो गया है । आर्य जाति के इतिहास में यह प्रथम अवसर था जब कि किसी ने विधर्मियों को शास्त्रार्थ में ललकारा व पछाड़ा । अब तक तो विधर्मी ही हिन्दुओं की दुर्बलताओं व अन्धविश्वास का लाभ उठाकर लिखित व मौखिक प्रहार किया करते थे । अब जब सत्य सनातन वैदिक धर्म से टक्कर लेनी

पड़ी तो सद्ज्ञान वेद के प्रचण्ड प्रकाश के सामने कोई टिक न सका ।

इसके कुछ समय पश्चात् ऋषि ने देहली दरबार के अवसर पर सब मत पन्थों के नेताओं का एक सर्व-धर्म सम्मेलन करके उन्हें देश-कल्याण के लिए एकता के सूत्र में पिरोने का प्रयास किया । भारतीय इतिहास में यह प्रथम एकता सम्मेलन था। यह समय पूर्व का एक शुभ प्रयास था परन्तु सुकठोर विदेशी जकड़ पकड़ के कारण यह फलीभूत न हो सका ।

२२ जनवरी सन् १८८१ को कलकत्ता विश्वविद्यालय के सीनेट हाल में देश भर के सैकड़ों पण्डितों को दक्षिणा देकर एक आर्य सन्मार्गदर्शिनी सभा का आयोजन किया गया । इसमें ऋषि का पक्ष सुने बिना उनके विरुद्ध व्यवस्था दे दी गई फिर भी वे न डगमगाये । यह सभा न आर्य थी और न ही सन्मार्ग-दर्शन से इस कुछ लेना देना था।

वे प्रथम विचारक-सुधारक थे–

महर्षि दयानन्द विश्व के सर्वप्रथम विचारक व मानवोद्धारक थे, जिन्होंने लिङ्ग, जाति व रंगभेद के बिना सब को आर्यसमाज के सभासद बनने का समान अधिकार दिया । तब तक विश्व के किसी भी देश में स्त्रियों को पुरुषों के समान मतदान का अधिकार प्राप्त नहीं था । विश्व में अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा का विचार भी उनकी देन है। वे निःशुल्क शिक्षा के प्रथम उद्घोषक थे । अपने देश

में जन-जागरण के लिए पूर्व पश्चिम व उत्तर दक्षिण में सघन भ्रमण करने वाले प्रथम नेता व सुधारक थे । यदि उन्हें कुछ वर्ष और जीने का अवसर मिल जाता तो वे कन्याकुमारी तक अपना शंखनाद सुनाने अवश्य जाते । उन्होंने शताब्दियों के पश्चात् वेद- धर्म के द्वार सब के लिए खोल दिये ।

राजस्थान में विषपान व बलिदान-

महर्षि वेदज्ञान की निर्मल गंगा को प्रवाहित करते हुए राजस्थान में विचरण कर रहे थे । उन्होंने राजाओं के व्यभिचार, अनाचार पर कड़े प्रहार किये। उन्हें सत्यभाषण का मूल्य चुकाना पड़ा । विरोधियों ने षड्यन्त्र रचकर उन्हें जोधपुर में दूध में विष घोल कर पिला दिया और बाहर इसका समाचार तक उनके भक्तों को न दिया । जोधपुर के भीषण अकाल के समय (पं० लेखराम रचित ऋषि-जीवन के प्रकाशन से भी पूर्व) जोधपुर के महाराजा सर प्रतापसिंह ने स्वयं ला० दीवानचन्द कानपुर वालों को बड़े दुःख से कहा कि ऋषि को जोधपुर में विष दिया गया। राव राजा तेजसिंह ने भी स्वामी श्रद्धानन्द जी के नाम अपने एक पत्र में ऋषि के विषपान की घटना की चर्चा की है । इस षड्यन्त्र में कौन-कौन सम्मिलित था, यह एक लम्बा प्रकरण है ।

३० अक्तूबर सन् १८८३ को दीपमाला के दिन सायंकाल वेला में उन्होंने 'प्रभु तेरी इच्छा पूर्ण हो, पूर्ण

हो, पूर्ण हो' कहते हुए नश्वर देह का त्याग कर दिया । उनके देह-त्याग का अद्भुत दृश्य देखकर पं० गुरुदत्त विद्यार्थी पर गहरा प्रभाव पड़ा । ईश्वर की सत्ताविषयक उनके सकल संशयों का स्वत: ही निवारण हो गया और वे सच्चे और पक्के आस्तिक बन गये । शरीर छोड़ने का उन्हें किञ्चित् भी दु:ख नहीं था । मृत्युञ्जय दयानन्द पर जीवन भर कई बार जानलेवा प्राणघातक वार किये गये। शाहपुराधीश ने जोधपुर को प्रस्थान करते समय जो सेवक उन्हें दिये वे सब धूर्त निकले । यह ऋषि ने स्वयं लिखा है । जोधपुर में जो कर्मचारी मिले वे सब भी कुटिल व निकम्मे सिद्ध हुए । उनकी मृत्यु एक दु:खद दुर्घटना तो थी परन्तु अपने अमर बलिदान से उन्होंने देश व जाति में नवजीवन का सञ्चार कर दिया । उन्होंने अपने बलिदान पर अपने द्वारा स्थापित समाज की नींव रखी । अनेक पुण्यात्माओं ने उनके बलिदान से सत्प्रेरणा पाकर देश, धर्म पर हंसते-हंसते प्राण निछावर कर दिये ।

ऋषि ने आदेश दिया था कि मेरी राख भी खेतों में खाद के रूप में डाल देना । उन्होंने जीते जी उजाला दिया और मरते-मरते भी प्रकाश करते गये ।

है मर कर भी जीतों के काम आने वाला ।
दयानन्द स्वामी ! तिरा बोलबाला ॥

***

तीसरा अध्याय

जीवन-दर्शन

गत साठ वर्षों में कुछ लोग आर्यसमाज का मूल्याङ्कन उसकी संस्थाओं व बड़े-बड़े भवनों को ही सामने रखकर करते हैं । यह उन लोगों की भूल है । इससे आर्यसमाज का अवमूल्यन हुआ है । इस से आर्यसमाज को समझने में बहुत भूल हुई है व हो रही है । इसके लिए इतिहास लेखकों से अधिक आर्यसमाजी स्वयं दोषी हैं जिन्होंने इस भ्रान्ति के निवारण के लिए कुछ नही किया। वास्तव में आर्यसमाज की मौलिकता व महत्त्व उसके जीवन-दर्शन से है ।

ऋषि दयानन्द के आगमन से पूर्व भारत से बाहर का जगत् भारत के प्राचीन धर्म व दर्शन के विषय में मुख्य रूप से यही जानता था–

१. ये लोग जगत् को मिथ्या मानने के कारण परलोक को ही महत्त्व देते हैं । ये एक ब्रह्म को ही सत्य मानते हैं ।

२. ये लोग संसार को स्वप्न मानते हैं ।

३. भारत में कुछ लोग संसार को दु:खों का घर मानते हैं । यह वर्ग ब्रह्म को नहीं मानता ।

४. ये लोग कर्म-फल सिद्धान्त को मानने के कारण प्रारब्धवादी, प्रमादी व उदासीन जीवन बिताने वाले हैं । इनका जीवन-दृष्टिकोण निराशावादी है ।

५. ये लोग कई भगवानों को मानने वाले हैं। इनका विश्वास है कि हर कङ्कर शङ्कर है ।

भारत के बारे में इस प्रकार की धारणा रखने वालों का इसमें क्या दोष था ? हमारी सोच व आचरण का लाभ उठाकर ही विदेशियों व विधर्मियों ने हमारे करोड़ों भाइयों को धर्मच्युत कर दिया ।

श्री पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय ने बहुत नपे तुले शब्दों में महर्षि दयानन्द के धार्मिक व दार्शनिक दृष्टिकोण को ऐसे प्रस्तुत किया है–

"He has given us a bold philosophy of life. A philophy of the reality of God, reality of men and the reality of the universe in which man has to live in. His is a philosophy of bold actions and not of idle musings."

अर्थात् उसने हमें एक वीरोचित दर्शन दिया है, परमात्मा की सत्यता का दर्शन, मनुष्य की सत्यता का दर्शन और जगत् की सत्यता का दर्शन जिसमें मनुष्य को कर्म करना है । उसका दर्शन साहसिक कर्मों का दर्शन है न कि प्रमाद-चिन्तन का अर्थात् यह निठल्ला चिन्तन नहीं है ।

आर्यसमाज तीन पदार्थों को अनादि व नित्य मानता है–ईश्वर, जीव व प्रकृति । ये तीनों न कभी पैदा हुए और न ही कभी नष्ट होंगे ।

यह कैसे ? विज्ञानवेत्ता मानते हैं कि Matter can neither be created nor it can be destroyed. अर्थात् प्रकृति न उत्पन्न की जा सकती है और न यह नष्ट की जा सकती है । इसी प्रकार ईश्वर व जीव की सत्ता भी अनादि व

नित्य है । वेद जगत् को मिथ्या, स्वप्न अथवा भ्रम नहीं मानता । वेदानुसार यह जगत् परिवर्तनशील तो है परन्तु सत्य है । जीव असंख्य हैं परन्तु उनकी संख्या ईश्वर के ज्ञान में है ।

श्री डा० भीमराव अम्बेडकर विद्यार्थी जीवन में ही आर्यसमाज से जुड़ गये थे परन्तु महान् आर्य संन्यासी स्वामी वेदानन्द जी की पुस्तक 'राष्ट्ररक्षा के वैदिक साधन' की भूमिका लिखते समय ही डा०
अम्बेडकर सरीखे विख्यात नेता को यह पता चला कि वेद में कहीं भी मायावाद स्वप्नवाद नहीं है । यह जानकर भाव विभोर होकर आपने लिखा था–

"In the meantime it is no small contribution to our knowledge that the theory that the world is Maya is a new invention. It is from this point of view that I commend this booklet."[1]

अर्थात् यह हमारे ज्ञान में कोई अल्पवृद्धि नहीं है कि मायावाद (संसार को मिथ्या मानना) एक नवीन कल्पना है । इस दृष्टि से मैं इस पुस्तक का हार्दिक अभिनन्दन करता हूं ।

कुछ लोग कहते हैं कि जगत् में जो कुछ दिखाई देता है यह भ्रम है । केवल प्रतीति है । सत्य नहीं है परन्तु स्मरण रखिये कि दो बातों में बड़ा भेद है–"What is not and appears and what is not and does not appear."

---

१. देखिये उपरोक्त पुस्तक की डा० अम्बेडकर जी लिखित अंग्रेजी भूमिका ।

अर्थात् एक है ही नहीं और प्रतीत होता है कि है और दूसरा यह कि वस्तु है भी नहीं और प्रतीत भी नहीं होती । जो है ही नहीं, आप उसकी क्या व्याख्या करेंगे? इस प्रकार आर्यसमाज की मान्यता है कि यदि केवल एक ही सत्ता है, ब्रह्म अथवा प्रकृति तो फिर जगत् में बहुत्व की आप क्या व्याख्या करेंगे? इस पर माथापच्ची करना मात्र एक बौद्धिक व्यायाम है । दोष देखने वाले के ज्ञान का है । उसकी समझ में दोष है अथवा दृष्टिदोष है । जो है ही नहीं, जो मिथ्या है, आप उसको क्या दोष देंगे?

भौतिक व अध्यात्मिक दोनों प्रकार का अद्वैतवाद एक भ्रान्त विचारधारा है । सांसारिक पदार्थों का एक से अधिक होना इस विचारधारा का प्रतिवाद करता है । जड़-जगत् में अनेकवाद को झुठलाना असम्भव है । पुस्तक के आकार की सीमा को ध्यान में रखते हुए हम यहां अद्वैतवाद पर विस्तार से नहीं लिख सकते । जगत् में दुःख, पाप, ताप, अज्ञान, ईर्ष्या, द्वेष, विचार भेद कहां से आ गये ? यदि ब्रह्म की ही एक सत्ता है तो विद्यालय, हस्पताल, रेलें, यातायात के अन्य साधन, कृषि व्यापार, उपदेश, सन्देश व आदेश किस के लिए और किसके द्वारा है ? ये वैज्ञानिक खोजें और आविष्कार किस के द्वारा और किस प्रयोजन से ? ये जगत् गुरु जो जगत् को मिथ्या बताते हैं, वे किस के गुरु हैं ? उपास्य, उपासक व उपासना का क्या अर्थ? माया की क्या व्याख्या है ? अज्ञान व माया गुण हैं या गुणी ? ये गुण हैं तो किस के ? माया गुणी है तो अद्वैतवाद

कहां रहा ?

"Svami Dayananda would often ask himself and his associates that if he was Brahman himself and other men too thought the same in their case, where was a room for so many idols, temples, absurd rituals and invidious differences between caste and caste and man and man ?"[1]

सारांश यह है कि स्वामी दयानन्द पूछते हैं कि यदि प्रत्येक व्यक्ति ब्रह्म ही है तो फिर इतनी मूर्तियों, मन्दिरों, निरर्थक रीतियों, एक जाति के दूसरी जाति से, एक मनुष्य के दूसरे मनुष्य से घृणास्पद मतभेदों के लिए कहां स्थान रह गया ?

हम एक साथ उत्पन्न नहीं होते, एक साथ मरते नहीं, और हमारी सोच एक नहीं, हमारे दुःख सुख पृथक् पृथक् हैं--इन कठोर वास्तविकताओं (Realities) से आँखें मूंद कर यह राग अलापते जाना कि केवल ब्रह्म की ही एक सत्ता है और जगत् मिथ्या है--यह अपने आपको अन्धेरे में रखने वाली बात है ।

इस्लाम व ईसाइयत का दार्शनिक दृष्टिकोण भी भारत के मायावाद का एक विकृत रूप है । वे भी यह मानते हैं कि सृष्ट्युत्पत्ति से पूर्व केवल परमात्मा की ही एक सत्ता थी । जीवों को व प्रकृति को उसने ही उत्पन्न किया । किस से ? और क्यों पैदा किया ? इसका सन्तोषजनक उत्तर उनके पास भी नहीं । ये दोनों मत ईश्वर

---

1. Philosophy of Dayananda Para 7.

को दयालु, न्यायकारी, दाता, स्रष्टा, व्यवस्थापक व स्वामी मानते हैं । ईश्वर सदा से इन गुणों वाला है । यदि जीवों को व प्रकृति को अनादि न माना जाये तो ईश्वर के ये सब गुण निरर्थक ही समझने चाहिए । सृष्ट्युत्पत्ति से पूर्व वह किसे न्याय देता था ? किस पर दया करता था ? किस का स्वामी था ? दाता था तो देता क्या था? अतः आर्यसमाज द्वारा प्रतिपादित वैदिक त्रैतवाद एक स्वाभाविक व सहज दर्शन है । इसे माने बिना जगत् की पहेली का कोई समाधान हो ही नहीं सकता ।

कुछ लोग कहते हैं कि सृष्टि अकस्मात् (By chance) बन गई । स्मरण रखिये–"There can be no chance where there is law" जहां नियम है वहां अकस्मात् कुछ हो ही नहीं सकता । डॉ० सत्यप्रकाश जी का यह कथन यथार्थ है–"Order would certainly appear to be nature's first law." व्यवस्था नियमबद्धता सृष्टि का प्रथम नियम प्रतीत होता है ।

"Dayananda says that law itself has no potentiality to bring about any action."[1]

अर्थात् ऋषि दयानन्द का यह कथन है कि नियम स्वयं ही कार्यान्वित नहीं हो सकता । नियम के लिए कोई नियामक चाहिए । यदि संसार में अनियमितता होती तो इससे नास्तिकता की ही पुष्टि होती ।

"Where there is a design, there must be a purpose in the brain of the designer."[2]

1. A critical Study of Philosophy of Dayananda. Page 207.
2. A critical Study of Philosophy of Dayananda Page 209.

अर्थात् जहां कहीं भी रूपरेखा होगी वहां रूपरेखा बनाने वाले के मस्तिष्क में उद्देश्य होगा । सृष्टि में आप सर्वत्र रूपरेखा व उद्देश्य दोनों ही देखेंगे । इससे यह सिद्ध होता है कि कोई सर्वज्ञ सत्ता इसकी रचयिता है ।

आप आर्यसामाजिक अथवा वैदिक दर्शन के सम्बन्ध में निम्न बिन्दुओं को सदा सामने रखेंगे तो जगत् की पहेली को आप ठीक ठीक समझ सकेंगे–

१. वैदिक दर्शन यथार्थवादी है । यह कल्पनाओं पर आधारित आदर्शवादी नहीं है ।

२. वैदिक दर्शन ईश्वर केन्द्रित नहीं, यह जीव केन्द्रित है । वेद यह बताते हैं कि प्रभु ने जगत् अपने लिए नहीं रचा । यह जीवों के कल्याण व उत्थान के लिए रचा गया है ।

३. वैदिक दर्शन अद्वैतवादी नहीं त्रैतवादी है।

४. वैदिक दर्शन जीव के कर्म की स्वतन्त्रता को मानता है अतः आशावादी है, निराशावादी नहीं।

५. वैदिक दर्शन परहितवादी है यह व्यक्तिवादी नहीं।

६. वैदिक दर्शन प्रार्थना, पूजा व उपासना का प्रयोजन आत्मशुद्धि मानता है । उपासना परमात्मा के लिए नहीं की जाती । यह मनुष्य की शान्ति, आत्मविश्वास, आत्मबल व उत्थान के लिए की जाती है ।

हमें इस अध्याय की समाप्ति करने से पूर्व पूज्य पं० गंगाप्रसाद जी उपाध्याय के इन वाक्यों को उद्धृत करने

का लोभ संवरण नहीं कर सकते ।

"सत्य कथन-यह है कि हम अपने संसार को प्रभावित करते हैं और हमारा संसार हमें प्रभावित करता है । हम संसार को बनाते तो हैं परन्तु शत प्रतिशत नहीं। यह संसार भी हमें बनता है परन्तु शत प्रतिशत नहीं । इससे यह सिद्ध होता है कि संसार का और हमारा पृथक् पृथक् अस्तित्व है । यद्यपि दोनों एक दूसरे से बहुत जुड़े हुए हैं।"[१]

अवतारवाद तथा पुनर्जन्म–

कुछ लोग ऐसा मानते हैं कि जब-जब संसार में पाप बढ़ता है तब-तब प्रभु दुष्ट-दलन के लिए अवतार धारण करके यहां आता है । आर्यसमाज कहता है कि पुण्य पाप तो जीव सदा से करता आया है । कभी पुण्य अधिक और कभी पाप । पाप कब नहीं था ? ईश्वर जब सर्वत्र है तो वह न तो कहीं जाता है और जब जाता ही नहीं तो आने का क्या अर्थ ? पाप किस देश में नहीं होता ? फिर अवतार बार-बार भारत में ही क्यों आते हैं ? अवतारवाद की धारणा वेदविरुद्ध है, निराधार है और कल्पित है । कुछ बनाना व जिलाना कठिन है । मारना व बिगाड़ना क्या कठिन है ? जिस प्रभु ने दुष्टों को शरीर दिया वह बड़ी सरलता से उनको मार भी सकता है । अवतार शब्द न तो वेदों में है, न दर्शनों में है और न उपनिषदों में यह शब्द मिलता है । प्रभु की वाणी वेद का प्रचार मन्द व बन्द होने से

---

१. 'द्रष्टव्य सृष्टि हमारी दृष्टि में' पृष्ठ ५

ऐसे ऐसे भ्रामक विचार संसार में फैलते गये । प्रभु को वेद अकायम् बताता है । वह परमेश्वर नस नाड़ी के बन्धन में नहीं आता । वह द्रष्टा है, वह शरीर धार कर भोगों के चक्कर में क्यों पड़ेगा ?

सैमेटिक मत यह मानते हैं कि जीव उत्पन्न किया गया । मरने के पश्चात् वह स्वर्ग या नरक में जायेगा अर्थात् उसका आदि तो है परन्तु अन्त नहीं होगा परन्तु आर्यसमाज कहता है जिसका अन्त नहीं उसका आदि भी नहीं और जिसका आदि है उसका अन्त भी होगा ।

जीव स्वर्ग नरक में सुख दु:ख भोगने के लिए रहेगा तो फिर बताना पड़ेगा कि वर्तमान जन्म के सुख दु:ख किन कर्मों के फल हैं ? मानना पड़ेगा कि इस जन्म के सुख-दु:ख भी किन्हीं पूर्व जन्मों के कर्मों का फल हैं ।

पूर्व जन्म माने बिना प्राणियों में पाये जाने वाले भेदों का कारण बता पाना असम्भव है । वेद कहता है जन्म-मरण का यह चक्र कर्मानुसार चलता रहता है । जड़ जगत् में हम देखते हैं कि मिट्टी से घड़ा बना और घड़ा फूटा तो मिट्टी बन गया। शव को कबर में गाड़ा गया । वहां वह खाद बन गया । कबर पर घास उग गई । वह बकरी ने खाई। बकरी का शरीर घास से बना । बकरी का मांस मियां जी ने खाया जिससे उनका शरीर बना । यह क्या है ? पुनर्जन्म ही तो है । जल से बर्फ़ और बर्फ़ से जल, भाप, मेघ, वर्षा, नदी, सिन्धु-वही जल रूप बदलता रहता है। यही पुनर्जन्म है । जब जड़ का नाश नहीं होता । जड़ जगत्

में पुनर्जन्म आप देखते हैं तो चेतन जीवों का नाश कैसे सम्भव है ? जीव जगत् में भी पुनर्जन्म का सिद्धान्त मानना ही पड़ता है । हम कभी नहीं थे और कभी नहीं होंगे, इसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती ।

***

चौथा अध्याय

ईश्वर और उसकी उपासना

आर्यसमाज के दूसरे नियम में ईश्वर के स्वरूप का बड़ा सुन्दर वर्णन किया गया है । आर्यसमाज की दार्शनिक विचारधारा पर प्रकाश डालते हुए पिछले अध्याय में भी हम ईश्वर की सत्ता व उसके गुणों पर कुछ लिख चुके हैं । यहाँ पुनः हम यह कहकर आगे चलेंगे कि आर्यसमाज ईश्वर को एकत्र नहीं सर्वत्र मानता है । वेद बड़े सुन्दर शब्दों में कहता है–

सऽओतः प्रोतश्च विभुः प्रजासु ।[१]

वह प्रभु प्राणियों में ओतप्रोत है । वह हम से दूर नहीं और हम उस से कहीं दूर नहीं । वह प्रभु हमें छोड़ता ही नहीं । वह हमारे अन्दर है और हम उसके अन्दर हैं। वह दयालु और न्यायकारी है । उसकी दया उसके न्याय का प्रकाश करती है और उसका न्याय उसकी दया की अभिव्यक्ति है। वह पाप क्षमा नहीं करता । वह सर्वशक्तिमान् है परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि वह अपने

१. यजुर्वेद ३२।८

नियम तोड़ सकता है ।

"What mercy can there be then, in allowing one man to go unpunished and making others suffer ?"[1]

अर्थात् किसी ने पाप किया और उसे दण्ड न देकर दूसरों को दुःख भोगने देने में क्या दया है ?

ईश्वर न्यायकारी है । वह हमारे खरे खोटे सब कर्मों का फल देता है । पाप क्या है और पुण्य क्या है ? न करने योग्य कार्य को करना व करणीय कार्य को न करना यही पाप कहलाता है । ईश्वर न तो पाप को पैदा करता है और न दुःख को उत्पन्न करता है । जो कुछ प्रभु ने दिया है वह सब कुछ लाभप्रद व कल्याणकारी है । उसके दिये पदार्थों का दुरुपयोग ही बुरा है । जीव अनादि है और उसकी कर्म करने की स्वतन्त्रता भी अनादि है । वह अनुचित मार्ग पर चलता है तो दुःख भोगता है और उचित ही करता है तो सुख पाता है । दुःख दवा है और सुख गिज़ा है (भोजन है) । "Pain given in return for the sin is remedial."

अर्थात् पाप का फल रूप दुःख जीवों के सुधार के लिए है ।

यह जो कहा जाता है कि ईश्वर जीव को कर्म करने की स्वतन्त्रता ही न देता तो जीव पाप ही क्यों करता ? यदि पाप न करता तो दुःखी भी न होता । यह एक निठल्ला चिन्तन है । जीव की कर्म करने की स्वतन्त्रता प्रभु की देन नहीं है । यह तो अनादि जीव का स्वाभाविक गुण

1. A critical Study of Philosophy of Dayananda. P. 197

है । स्वतन्त्रता से किसी को वञ्चित करना भी तो एक अभिशाप है । फिर न पाप का प्रश्न उठेगा और न पुण्य का। न कोई धर्मात्मा होगा और न परोपकारी पुण्यात्मा। उस अवस्था में उन्नति व अवनति दोनों का कुछ भी अर्थ नहीं रहेगा ।

जीव की कर्म की स्वतन्त्रता को मानने के कारण वैदिक धर्म आशावादी है । "No eternal hell. No eternal heaven. The door of bliss is always open."[1]

अर्थात् यहां न सदा का नरक है और न सदा का स्वर्ग है । कल्याण का द्वार यहाँ सदैव खुला है। जब भी शुभ कर्म करने आरम्भ कर दो कल्याण ही कल्याण होगा। उस आनन्दघन द्वारा आनन्द की वर्षा होगी और अवश्य होगी ।

पूर्वकृत कर्मों का फल तो मिलेगा ही परन्तु इसका अर्थ यह तो नहीं कि आप आगे कुछ भी नहीं कर सकेंगे। आपकी कर्म की स्वतन्त्रता पूर्व किये गये कर्मों के दण्ड को, दु:ख के काठिन्य व कठोरता को शुभ कर्मों से कम करने में सहायक होगी ।

प्रार्थना पापनाशक है, परन्तु पाप-फलनाशक नहीं–

आर्यसमाज यह मानता है कि प्रार्थना या ईशोपासना पाप से तो बचाती है परन्तु पाप के फल से यह नहीं बचा सकती । "Worship according to the Arya Samaj is not

1. Vedic Philosophy Page 14.

expiatory, but purificatory." अर्थात् प्रार्थना पूजा किये गये पापों का प्रायश्चित्त नहीं है यह तो जीवन के शुद्धिकरण का कर्म है। ऋषि दयानन्द ने लिखा है कि ईश्वर के गुण, कर्म व स्वभाव के अनुसार अपने गुण, कर्म व स्वभाव का सुधार करना ही नाम स्मरण है । पाठक इस विषय में अधिक जानने के लिए ऋषि दयानन्द कृत सत्यार्थप्रकाश व ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में उपासना विषय तथा आर्याभि-विनय का स्वाध्याय करें ।

आर्यसमाज यह नहीं मानता कि परमात्मा को महिमा मण्डित करने या रिझाने के लिए भक्ति करनी चाहिए । जीव ईश्वर की महिमा को क्या बढ़ा सकता है ? पूर्ण प्रभु को हमारी स्तुति, प्रार्थना व उपासना की आवश्यकता नहीं है । हम उपासना नहीं करेंगे तो उसका कुछ बिगड़ेगा नहीं और यदि हम प्रार्थना करेंगे तो इस से हमें ही सुख शान्ति की प्राप्ति होगी । गायत्री आदि वेद-मन्त्रों से यह बात स्पष्ट हो जाती है ।

हम पहले बता चुके हैं कि आर्यसमाज मूर्तिपूजा, कबरपूजा, पीरपूजा, ताज़ियापूजा व किसी व्यक्ति विशेष की पूजा में विश्वास नहीं करता । अपने स्वशुभ कर्मों से ही व्यक्ति मोक्ष को प्राप्त कर सकता है । ईश्वर व मनुष्य के मध्य में कोई भी बिचौलिया (Mediator) नहीं हो सकता। ईश्वर व जीव का पिता पुत्र का, व्याप्य व्यापक व स्वामी सेवक का सीधा सम्बन्ध है ।

इस विचारधारा को मानने से कोई भी अपने दुःखों

के लिए ईश्वर को दोषी नहीं मानेगा, न ही कोई संसार को दु:खों का घर मानेगा । विज्ञान व दर्शन को पापयुक्त नहीं मानेगा । मनुष्य हिंसा से बचेगा । सब जीवों को अपने जैसा मानेगा । सृष्टि नियमों के पालन में तत्पर रहेगा । अन्धविश्वास से बचेगा । सृष्टि-नियम विरुद्ध चमत्कारों को नहीं मानेगा । मनुष्य प्रारब्धवादी नहीं, परमार्थी पुरुषार्थी बनेगा । सितारों की गुलामी से बचेगा । फलित ज्योतिष के चक्कर से बचेगा । वह स्वयं को परमात्मा के हाथ की कठपुतली नहीं समझेगा । वह आत्मविश्वास को जगाकर आत्मनिर्भर बनेगा ।

व्यक्ति, परिवार तथा समाज–

आर्यसमाज व्यक्ति-जीवन के चार पड़ाव मानता है। इन्हें आश्रमव्यवस्था कहा गया है । पहला आश्रम है ब्रह्मचर्य-आश्रम । प्रत्येक पुरुष के लिए २५ वर्ष तक ब्रह्मचर्य का पालन करना अवश्यक है। कन्याओं को १६ वर्ष तक ब्रह्मचर्य के नियमों का पालन करना आवश्यक है । शेष तीन आश्रम अनिवार्य नहीं । गृहस्थ, वानप्रस्थ व संन्यास आश्रम में प्रवेश का अधिकार सब को नहीं दिया जा सकता । प्रत्येक व्यक्ति की योग्यता, क्षमता, मानसिक व आत्मिक स्थिति पर ही आश्रम-परिवर्तन निर्भर करता है। अन्तिम दो आश्रमों का सम्बन्ध मन के बदलने से है । मात्र वस्त्र बदलने का नाम वानप्रस्थ व संन्यास नहीं है ।

आर्यसमाज गुण, कर्म व स्वभाव से वर्ण-व्यवस्था

मानता है । वर्ण चार हैं । जाति–पांति का नाम वर्णव्यवस्था नहीं । आर्यसमाज इस लक्ष्य की पूर्ति में समर्थ सिद्ध नहीं हुआ । स्वामी श्रद्धानन्द सरीखे नेताओं का इस दिशा में उत्साह वन्दनीय रहा है । जन्म की जाति–पांति समाज के लिए एक अभिशाप है ।

प्रत्येक समाज व प्रत्येक देश में कुछ रीति- रिवाज व संस्कार होते हैं । आर्यसमाज प्रत्येक गृहस्थी के लिए पांच यज्ञों का विधान मानता है । इनका उल्लेख प्राचीन आर्य स्मृतियों में किया गया है । ब्रह्मयज्ञ, देवयज्ञ, पितृयज्ञ, भूतयज्ञ व अतिथियज्ञ आर्य जीवन–पद्धति की एक अद्‌भुत विशेषता है । इन पांच प्रकार के कर्त्तव्यों को निभाने वाला व्यक्ति आत्मविकास करता हुआ परिवार व समाज का एक उपयोगी अंग बन जाता है ।

आर्यसमाज संसार में जन्म लेने वाले प्रत्येक व्यक्ति के लिए १६ संस्कारों के करने का निर्देश देता है । पहले तीन संस्कार तो व्यक्ति के जन्म से पूर्व ही किये जाते हैं। आगे के बारह संस्कार बालक के जन्म से आरम्भ होते हैं । अन्तिम है अन्त्येष्टि संस्कार। यह मृत शरीर के दाहकर्म के लिए है । यह देह का त्याग करने वाले जीव के लिए नहीं होता। इनकी विस्तृत व्याख्या के लिए पाठक ऋषि दयानन्द कृत संस्कारविधि आदि ग्रन्थों को देखें ।

***

पाँचवाँ अध्याय

आहार, संस्कार और व्यवहार

आर्यसमाज के संस्थापक ने शाकाहार पर विशेष बल दिया है। उन्होंने सत्यार्थप्रकाश में ३२ बार मांस-भक्षण निषेध व शाकाहार का निर्देश किया है। वेद में अनेक ऋचाओं में अन्न, वनस्पतियों, फलों व दूध घृत के सेवन का उपदेश व निर्देश है। आर्यसमाज के संस्थापक के प्रवचन सुनकर व उनके सद् ग्रन्थों को पढ़कर अनेक व्यक्तियों ने मांसाहार का त्याग किया। आर्यसमाज के आरम्भिक काल में आर्यसमाज में प्रवेश करते ही लोग मांसाहार छोड़ देते थे। मुन्शीराम व लेखराम आर्यसमाज के दोनों बलिदानी नेता पहले मांसाहारी थे। उन्होंने दृढ़तापूर्वक यह दुर्व्यसन छोड़ा।

अंग्रेज़ों ने ऋषि दयानन्द के पीछे एक गुप्तचर रायबहादुर मूलराज को नियुक्त किया। इसे ऋषि ने गोकरुणानिधि का अंग्रेज़ी अनुवाद करने को कहा। इसने पुस्तक लेकर रख ली और ऋषि के बार-बार कहने पर भी यह कार्य न किया। इसके लाहौर आने से पूर्व किसी ने मांस-भक्षण की बात न कही। ऋषि के बलिदान के पश्चात् लाहौर आकर इसने आर्यसमाज में मांसाहार के प्रचार का झण्डा उठाया। कुछ बाबू साथ लगा लिये। इसने १८९२ में लाहौर समाज में अंग्रेज़ी में एक लैक्चर देकर मांसाहार के अभियान को तीव्र गति देनी चाही। इस लैक्चर

से आर्यसमाज में फूट पड़ गई । अगले वर्ष पंजाब में प्रादेशिक सभा काग़ज़ों पर आ गई। मूलराज की अंग्रेज़ी साम्राज्य के प्रति यह स्वर्णिम सेवा थी कि उसने पंजाब में आर्यसमाज को दो फाड़ कर दिया । प्रादेशिक सभा कहती तो यही रही कि हमारा मत वही है जो ऋषि दयानन्द का है अर्थात् मांसाहार वेदविरुद्ध है परन्तु प्रादेशिक सभा का अस्तित्व डी०ए०वी० कालेज कमेटी की दया पर रहा है। कमेटी में सदा मांसाहारियों का ही वर्चस्व रहा है ।

यह दुर्भाग्य की बात है कि दयालु दयानन्द द्वारा स्थापित आर्यसमाज में एक मांस पार्टी बन गई। ला० लाजपतराय जी ने ठीक ही लिखा है कि यदि महात्मा हंसराज पहले ही मांस छोड़ देते तो आर्यसमाज में फूट न पड़ती परन्तु इतिहास में अगर मगर किन्तु परन्तु के लिए कोई स्थान नहीं होता ।

हर्ष का विषय है कि आज सारे विश्व में शाकाहार का आन्दोलन फैल रहा है । विश्वप्रसिद्ध वैज्ञानिक मांसाहार को स्वास्थ्य के लिए घातक मान रहे हैं । यह ऋषि दयानन्द की एक दिग्विजय है। आर्यसमाज यह मानता है कि आहार का मन व आत्मा पर भी गहरा प्रभाव पड़ता है । मांसाहार से व्यक्ति के संस्कार बिगड़ते हैं । संस्कारों के दूषित होने से व्यक्ति का व्यवहार आचरण बिगड़ जाता है । पशुओं की निर्मम हत्या से आकाश उनकी चीत्कार से भर जाता है । इससे वातावरण में भाव प्रदूषण होता है । विश्व–शान्ति कैसे हो जब कि सूर्योदय से पूर्व ही मनुष्य क्रूरतापूर्वक-

लाखों जन्तुओं का संहार कर दें ? कैंसर आदि भयंकर रोगों का एक मुख्य कारण मांसाहार है । यह आज विज्ञान की खोज का सार है ।

मनुष्य स्वभाव से मांसाहारी नहीं है । यह तो संगत व संस्कारों के बिगड़ने से मांस अण्डे का सेवन करने लगता है । बाईबल व कुरान के अनुसार भी मनुष्य की उत्पत्ति अदन के उद्यान में हुई । वहां इसे ईश्वर ने अन्न, फल व वनस्पतियों के सेवन का आदेश दिया था । वहां कोई बूचड़ की दुकान तो थी नहीं । प्रभु की कृपा से मानव जाति ऋषि दयानन्द का सन्देश सुनकर मांसाहार का पाप छोड़कर कल्याण-मार्ग पर अग्रसर होगी ।

***

छठा अध्याय

आर्यसमाज के कुछ हुतात्मा

वीर चिरञ्जीलाल

आर्यसमाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द ने धर्म की बलिवेदी परअपने प्राण वारे । उनके बलिदान से आर्यों को धर्मप्रचार व धर्मरक्षा के लिए हँसते-हँसते कष्ट सहन करने की प्रबल प्रेरणा मिली। विश्व इतिहास में आर्यसमाज ही एक ऐसा धार्मिक संगठन है जिसे अपने जीवन के प्रथम एक सौ वर्षों में इतने बलिदान देने का सौभाग्य प्राप्त है।

ऋषि दयानन्द के पश्चात् वीर चिरञ्जीलाल ने १८९३ ई० में वीरगति पाई । उन्हें भी विषपान करने का

सुयश प्राप्त हुआ । आधुनिक काल में धर्म-प्रचार करते हुए उन्हें ही सर्वप्रथम कारागार की यातनाएँ भोगने का गौरव प्राप्त हुआ । महात्मा मुन्शीराम जी ने उनका अभियोग लड़ा और उन्हें कारागार से छुड़वाया ।

वह एक निर्भीक सत्यवक्ता थे । तप त्याग की मूर्ति थे । बड़े लग्नशील थें । धर्मप्रचार करते हुए उन्हें असह्य कष्ट सहने पड़े । कई बार प्राणघातक वार किये गये परन्तु वह अडिग रहे । उनकी माता के निधन पर उनके विरो-धियों ने उनका प्रचण्ड बहिष्कार किया । शव को कन्धा देने वाला दूसरा कोई व्यक्ति नहीं था । वह फिर भी न डगमगाये । लुधियाना उनका केन्द्र था । यहीं सन् १९७७ में ऋषि के प्रवचन-व्याख्यान सुनकर वैदिक ध र्मी बने थे । उनकी वाणी में ओज था, रस था और सत्य कहने का उन में बड़ा साहस था ।

रक्तसाक्षी पं० लेखराम

ऋषि दयानन्द जी के बलिदान के १४ वर्ष पश्चात् वीर शिरोमणि पं० लेखराम ने छह मार्च १८९७ में वीर गति प्राप्त करके आर्यसमाज की कीर्ति को चार चाँद लगा दिये । आपका जन्म आठ चैत्र संवत् १९१५ को ग्राम सैदपुर ज़िला झेलम में हुआ था । १८८१ ई० में अजमेर में ऋषि-दर्शन किये । आप पुलिस विभाग की नौकरी पर लात मार कर धर्मप्रचार के विस्तृत क्षेत्र में कूद पड़े ।

आप उर्दू, फ़ारसी व अरबी के अधिकारी विद्वान्

थे । बड़े तार्किक और अध्ययनशील थे । अद्भुत लेखक व ओजस्वी वक्ता थे । आप की ज्ञानप्रसूता वाणी व लेखनी ने लाखों नर-नारियों के जीवन पलट दिये ।

आप उर्दू-फ़ारसी के कवि भी थे । बेजोड़ शास्त्रार्थ महारथी और एक आदर्श सुधारक व धर्म-प्रचारक थे । प्राण तली पर धर कर कई बार धर्मच्युत हो रहे हिन्दुओं को विधर्मियों से बचाया। उनके व्याख्यान सुनकर कई विधर्मी शुद्ध होकर आर्य धर्म में दीक्षित हुए । अदम्य उत्साह से पाखण्ड खण्डन करते थे । वैदिक सिद्धान्तों के मण्डन व विधर्मियों के प्रहार का उत्तर देते हुए कई मौलिक पुस्तकें लिखीं । आर्य गज़ट उर्दू के सम्पादक रहे । विलक्षण ऊहा वाले विद्वान् थे ।

मिर्ज़ा गुलाम अहमद कादियानी ने श्रीराम, कृष्ण, माता कौशल्या, वेद, उपनिषद् पर घृणित वार किये तो उसे उसके घर पर जाकर ललकारा । मिर्ज़ा ने मौत की धमकियाँ दीं परन्तु पं० लेखराम शीश तली पर धर कर धर्म-प्रचार में संलग्न रहे । एक पाजी शुद्ध होने का बहाना बनाकर उनके पास आया। छल से पण्डित जी के पेट में छुरा घोंप दिया । छह मार्च १८९७ को आप ने हंसते-हंसते लाहौर में नश्वर देह का त्याग किया ।

शूरता की शान श्रद्धानन्द

पं० लेखराम जी के पश्चात् फ़रीदकोट पंजाब में मतान्ध अहिंसावादी जैनियों ने बाबू तुलसीराम नाम के एक आर्य स्टेशन मास्टर की सन् १९०४ में हत्या कर दी । यह

भी एक गौरवपूर्ण बलिदान था ।

प्रथम विश्वयुद्ध के दिनों में काले पानी में वीर रामरखामल नाम के एक आर्य क्रान्तिकारी ने यज्ञोपवीत उतारे जाने पर मरणव्रत रखकर अपनी आहुति दी । वीर सावरकर जी ने उन पर अच्छा लिखा है । उन दिनों सरकारी दमन के कारण भारतीय प्रेस में इस बलिदान की विशेष चर्चा न हुई ।

इसके पश्चात् २३ दिसम्बर सन् १९२६ में आर्य-समाज के सर्वमान्य नेता स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज को देहली में अब्दुल रशीद नाम के एक पाजी कायर ने पिस्तौल के दो फ़ायर करके धर्म की बलिवेदी पर शीश चढ़ाने का शुभ अवसर प्रदान कर दिया ।

स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज एक कर्मयोगी थे । सारा जीवन अविराम संग्राम किया । वे कथनी करनी से एक थे । गुरुकुल शिक्षा-प्रणाली के सूत्र- धार के रूप में देश विदेश में धूम मचा दी । भारतीय स्वाधीनता संग्राम में देहली के चाँदनी चौक में गोराशाही की संगीनों के आगे सीना खोलकर एक इतिहास बना डाला ।

सब करणीय कार्यों को सोत्साह करते रहे । दलितोद्धार, शुद्धि-आन्दोलन में वे अग्रणी रहे । जाति-बन्धन तोड़ने के लिए दूसरों के लिए आदर्श बने। राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रचार में सब से आगे रहे । केरल में वायक्कुम सत्याग्रह का नेतृत्व किया ।

सिखों पर गुरु के बाग़ के मोर्चा में अंग्रेज़ों ने

अत्याचार किये तो वे सिखों के जत्थेदार बनकर जेल में गये । उन जैसा तेजस्वी, प्रतापी व बलिदानी नेता इस देश व आर्यसमाज को फिर नहीं मिला ।

ला० लाजपतराय के देश से निष्कासन के समय जब उनके घनिष्ठ मित्रों डी०ए०वी कालेज कमेटी के लोगों ने लाला जी से सम्बन्ध विच्छेद कर लिया तो आतंक के उस युग में महात्मा मुन्शीराम ने डटकर लाला जी का पक्ष लिया । अगले दस वर्षों तक आर्यसमाज पर विपदा के बादल मण्डराते रहे, महात्मा मुन्शीराम ने बड़ी निडरता से तब आर्यसमाज का नेतृत्व किया । वे एक बार भी तब अंग्रेज़ शासकों के द्वार पर गिड़गिड़ाने नहीं गये । उस महाप्रतापी संन्यासी का जीवन भी शानदार था और उन को उस जीवन के अनुरूप ही शानदार मृत्यु प्राप्त हुई ।

स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज के गौरवपूर्ण बलिदान का स्मरण करते समय हम उनके निजी सचिव श्री धर्मपाल विद्यालङ्कार तथा उनके सेवक वीर धर्मसिंह की वीरता का स्मरण किये बिना नहीं रह सकते । जब हत्यारे ने स्वामी जी पर छल से फ़ायर किये तो गोलियों की आवाज सुनकर साहसी धर्मसिंह ने आकर उसे दबोच लिया । उसने धर्मसिंह पर भी फायर कर दिया । इतने में स्नातक धर्मपाल जी कायर क्रूर हत्यारे को नीचे पटक कर उसकी छाती पर तब तक बैठे रहे जब तक कि पुलिस न आ गई ।

धर्मवीर महाशय राजपाल जी

६ अप्रैल, सन् १९२९ को लाहौर में एक और

प्रतिष्ठित आर्य पुरुष ने धर्म की बलिवेदी पर अपना शीश चढ़ाया । यह थे आर्यसमाज के विश्वविख्यात प्रकाशक व साहित्य विक्रेता श्री महाशय राजपाल जी। इन की हत्या के लिए मतान्ध मुसलमानों ने समय-समय पर तीन प्राणघातक आक्रमण किये । तीनों हत्यारों को आर्य वीरों ने धर दबोचा और तीनों ही दण्डित हुए । आर्य हुतात्माओं की सूची बहुत लम्बी है । दक्षिण भारत में कृष्णराव ईटेकर, उनकी पत्नी श्रीमती गोदावरी व गोविन्दराव तथा श्री काशीनाथ जीवित जलाये गये । नेपाल में श्री शुक्रराज शास्त्री जी को वृक्ष पर लटका कर फांसी दी गई । इन सब का दोष क्या था ? आर्यों ने तो किसी मतावलम्बी प्रचारक व नेता की कभी हत्या नहीं की । आर्यसमाज का इतिहास साक्षी है–

"We hate none but we love our own the most."

अर्थात् ''हम किसी से घृणा नहीं करते परन्तु अपने सिद्धान्तों व अस्तित्व से तो अत्यधिक प्यार करते हैं ।'' बस यही हमारा दोष है ।

मुसलमानों ने आर्यसमाज के प्रवर्तक व हिन्दुओं के विरुद्ध कई आपत्तिजनक पुस्तकें प्रकाशित कीं यथा ''कृष्ण तेरी गीता जलानी पड़ेगी'', ''उन्नीसवीं शती का महर्षि'' इत्यादि । श्री महाशय राजपाल ने इनके प्रत्युत्तर में 'रंगीला रसूल' प्रकाशित किया तो उनकी हत्या कर दी गई । महाशय जी देश के स्वाधीनता संग्राम में कुछ पुस्तकें छाप कर अंग्रेज़ों के कोपभाजन बने । उन पर अभियोग चलाकर उन्हें सताया गया । उन्होंने कई क्रान्तिकारियों व

देशभक्तों के कई प्रसिद्ध ग्रन्थ छापे । वह बड़े सौम्य स्वभाव के विनम्र, प्रेमल, धर्मात्मा व निडर धर्मवीर थे। वह एक सच्चे व पक्के धर्मयोद्धा थे । पं० लेखराम जी के विचार सुनकर आर्य बने थे, उन्हीं जैसे निर्भीक निस्वार्थी व प्राणों के निर्मोही थे । वह चाहते तो मतान्ध मौलवियों के सामने झुककर अपने प्राण बचा सकते थे परन्तु नश्वर देह को बचाने के लिए आपने धर्म का सौदा न किया । पं० मदनमोहन मालवीय जी ने ठीक ही कहा था कि महाशय राजपाल एक सच्चे महात्मा थे ।

दलितोद्धार के लिए ऋषि दयानन्द के तीन शिष्यों वीर रामचन्द्र, वीर मेघराज व भक्त फूलसिंह ने वीरगति पाई। वीर नाथूराम, वेदप्रकाश, धर्मप्रकाश, महादेव, घुन्नासिंह आदि देश, धर्म पर जानें वार गये। उन सब के गौरवपूर्ण बलिदान से आने वाली पीढ़ियाँ प्रेरणा प्राप्त कर सद् ज्ञान वेद के प्रकाश को फैलाने के लिए संघर्षरत रहेंगी।

श्री भाई श्यामलाल जी

आपका जन्म हैदराबाद रियासत के भालकी कस्बा में हुआ । अब भालकी (बीदर ज़िला) कर्नाटक में है । छोटी आयु में ही वैदिक धर्मी बन गये । इनके ज्येष्ठ भ्राता पं० बंशीलाल जी भी बड़े कर्मठ आर्य नेता थे । दोनों ने निज़ाम राज्य में वैदिक धर्म प्रचार की धूम मचा दी ।

हैदराबाद राज्य की मतान्ध सरकार हिन्दू प्रजा को प्रताड़ित करती रहती थी । हिन्दू स्वतन्त्रतापूर्वक धर्मप्रचार व पूजा-पाठ नहीं कर सकते थे ।

भाई श्यामलाल जी ने स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज को अपना आदर्श मानकर अत्याचारी निज़ामशाही से पग-पग पर टक्कर ली । आर्यसमाज के द्वारा किये जाने वाले सब परोपकारी कार्यों में वे आगे रहते थे । शुद्धि का कार्य किया । शास्त्रार्थ किये। वेदप्रचार किया । लोगों को आस्तिक, एकेश्वरवादी बनाया । युवकों का निर्माण किया। व्यायामशालाएँ स्थापित कीं । मांसाहार आदि दुर्व्यसन छुड़वाये । बीसियों आर्यसमाजें स्थापित कीं । कई दिलजले समाज-सेवक आर्यसमाज को दिये । रोगियों की, विपदा-ग्रस्त पीड़ितों की सेवा में सदा आगे रहे । महामारी फैली तो भी जान जोखिम में डालकर जनसेवा की । उन पर जीवन में कई जानलेवा आक्रमण किये गये ।

निज़ाम की मतान्ध सरकार श्याम भाई का जीवन समाप्त करने पर तुली हुई थी । उन्हें बीदर जेल में डाला गया । वहाँ दूध में विष दिया गया । १६।१२।१९३८ को उन्होंने वीरगति पाई ।

***

सातवाँ अध्याय

जनजागरण को आर्यसमाज की देन

ऋषि दयानन्द विश्व के सर्वप्रथम विचारक थे जिन्होंने अपने कालजयी ग्रन्थ की भूमिका में यह घोष किया कि मानवजाति वास्तव में एक है । इस प्रकार सारे विश्व में Racial Distinction नस्लवाद की मान्यता को

आर्यसमाज ने चुनौती दी ।

ऋषि दयानन्द ने ही भारत में सर्वप्रथम अंग्रेज़ी न्यायालय की पक्षपात के कारण निन्दा करते हुए लिखा था—"इसी से ईसाई लोग ईसाइयों का बहुत पक्षपात कर किसी गोरे ने काले को मार दिया हो, तो भी बहुधा पक्षपात से निरपराधी कर छोड़ देते हैं।"[१]

विदेशी साम्राज्य के अत्याचारों व शोषण पर तीखा प्रहार करते हुए लिखा—"वाह ! तभी तो ईसाई लोग परदेशियों के माल पर ऐसे झुकते हैं कि जैसे प्यासा जल पर, भूखा अन्न पर ।"[२]

स्मरण रहे कि प्रथम विश्व युद्ध तक गांधी जी व पूरी कांग्रेस अंग्रेज़ी न्यायपालिका की निष्पक्षता के गीत गाते नहीं थकते थे । हाँ ! लाल, बाल, पाल सरीखे कुछ नेताओं का विदेशी न्यायपालिका पर से विश्वास उठ चुका था । ऋषि के इन वाक्यों ने देशवासियों को झकझोरा व निर्भीक बना दिया ।

ऋषि दयानन्द ने अपनी लेखनी व वाणी से भारतीयों को ग्राम-पंचायतों द्वारा अपने विवाद निपटाने का क्रान्तिकारी सन्देश दिया ।

महाराष्ट्र में ही सर्वप्रथम आर्यसमाज स्थापित हुआ और महाराष्ट्र के पूना नगर के श्री गणेश वासुदेव जोशी १८७९ में काशी नगरी गये और ऋषि दयानन्द द्वारा दिये गये

१. द्रष्टव्य सत्यार्थप्रकाश तेरहवाँ समुल्लास ।
२. द्रष्टव्य सत्यार्थप्रकाश तेरहवाँ समुल्लास ।

चार सूत्री कार्यक्रम को देशप्रेमियों के सामने रखा। यह चार सूत्री कार्यक्रम इस प्रकार से था–

१. सर्वत्र एक सार्वजनिक संगठन का निर्माण किया जाये ।

२. स्थान–स्थान पर पंचायती न्यायालय स्थापित हों।

३. स्वदेशी वस्तुओं का ही प्रयोग किया जाये।

४. शिल्प, कला कौशल की उन्नति की ओर ध्यान दिया जावे ।

इससे पूर्व कि यह आन्दोलन व्यापक रूप धारण करता अनिष्टकारी कुटिल तत्त्वों के भीषण षड्यन्त्र से ऋषि को विष देकर उन्हें बलिदान पथ का पथिक बना दिया गया ।

ऋषि के जीवन काल में ही एक आर्य मासिक 'आर्य दर्पण' इन सब बातों का प्रचार करते हुए अंग्रेज़ी राज की भर्त्सना करने से कभी नहीं चूकता था। इसी पत्र में प्रकाशित एक उर्दू कविता की कुछ पंक्तियाँ यहां दी जाती हैं–

भला यह तो बोलो है क्या बात तुम में,
जो हम से ज़्यादा फ़ज़ीलत तुम्हारी ।
गज़ब है यह उल्टी हमीं को मलामत,
हमारी कमाई है दौलत तुम्हारी ॥
मगर ख़ैर अब वक्त वह आ गया है,
चलेगी न कुछ भी शरारत तुम्हारी ॥

इसी पत्रिका के सभी अंकों में अंग्रेज़ी शासन पर

तीखे व्यंग्य बाण कसे जाते थे । एक गीत आर्य प्रचारक भजनोपदेशक ग्राम ग्राम में गा गाकर देश का स्वाभिमान जगाकर हीन भावना भगाते रहे–

कभी हम बुलन्द इकबाल थे,
तुम्हें याद हो कि न याद हो ।
हर फ़न में रखते कमाल थे,
तुम्हें याद हो कि न याद हो ॥

लाहौर में आर्यसमाज के नगरकीर्तन में श्री यशवन्तसिंह वर्मा ने स्वरचित एक गीत गाया । इस गीत की निम्न पंक्ति सुन–सुनकर बाबुओं ने अंग्रेज़ी हैट व विदेशी वस्त्र की पगड़ियाँ उतार–उतार कर नालियों में फेंक दीं ।

"उनकी इज़्ज़त भी क्या ख़ाक जिनको पगड़ी दें परदेसी ।"

यह घटना ला० लाजपतराय के देश से निष्कासन (१९०७ ई०) से पहले की है ।

आर्यसमाज के गुरुकुलों का प्रार्थना गीत आर्यसमाजों में झूम झूम कर गाया जाता था–

स्वाधीनता के मन्त्र का जप हम सदा करें ।
सेवा में मातृभूमि के तन मन निसार हो ॥

आर्यसमाज ने जन–जागरण का ऐसा शंख फूंका कि आर्यों में देशहित मरने मिटने की एक होड़ सी लगी रही ।

१. १८५७ के पश्चात् सेना में विद्रोह फैलाने के दोष में फांसी पाने वाला प्रथम क्रान्तिवीर सोहनलाल पाठक आर्यसमाजी था ।

विदेशों में सर्वप्रथम फांसी दण्ड पाने वाला मदनलाल धींगरा आर्यसमाजी था ।

देशी राज्यों में देशभक्ति के अपराध में सब से पहला अभियोग पटियाला के आर्यों पर चलाया गया। दर्जनों आर्यों को राज्य से निष्कासित किया गया।

भारत के वायसराय लार्ड हार्डिंग पर बम फेंकने के अपराध में फांसी दण्ड पाने वाले क्रान्तिकारी अधिकतर आर्यसमाजी ही थे । सन् १९३१ में पंजाब के गवर्नर पर गोली चलाकर शासन को कंपाने वाला हुतात्मा हरिकृष्ण आर्यसमाजी ही था ।

प्रथम सत्याग्रह में न्यायालय का अपमान करके दण्डित होने वाला सत्याग्रही मनसाराम आर्यसमाज का एक प्रतिष्ठित विद्वान् था ।

वायसराय के आदेश से केवल एक ही साधु सेनानी स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी को लाहौर के शाही किले में यातनाएँ दी गईं । उन पर सेना में विद्रोह फैलाने का दोष लगाया गया ।

केवल एक ही वैज्ञानिक स्वराज्य संग्राम में जेल में ठूंसा गया । वे थे हमारे डॉ० स्वामी सत्यप्रकाश जी। उन पर बम बनाने का दोष लगाया गया ।

भारतीय स्वाधीनता-संग्राम में केवल चार व्यक्ति जीवित जलाये गये । ये चारों आर्यसमाजी थे । (१) कृष्णराव ईटेकर, (२) उनकी पत्नी श्रीमती गोदावरी देवी, (३) श्री गोविन्दराव जी, (४) श्री काशीनाथ । इनमें

से तीन महाराष्ट्र के बीड़ ज़िला के थे और चौथे गोविन्दराव बीदर ज़िला (कर्नाटक) के थे । यह सब कुछ निज़ाम राज्य में हुआ ।

भारतीय स्वाधीनता संग्राम में देशी राज्यों में केवल एक ही स्वाधीनता सेनानी को कारागार में विष दिया गया और वह था आर्यसमाज का महान् नेता भाई श्यामलाल वकील ।

सामाजिक चेतना का तो श्रेय ही आर्यसमाज को प्राप्त है–

आज कितने लोग यह जानते हैं कि विश्वप्रसिद्ध वैदिक विद्वान् व वैज्ञानिक पं० गुरुदत्त विद्यार्थी ब्राह्मणेतर कुल में जन्मे थे ।

१८७५ ई० में आर्यसमाज स्थापना वर्ष में श्याम जी कृष्ण वर्मा का विवाह जाति-बन्धन तोड़कर हुआ था ।

ऋषि के बलिदान के तुरन्त पश्चात् एक एक्स्ट्रा असिस्टैण्ट कमिश्नर मौलाना अब्दुल अज़ीज़ को पं० लेखराम जी के प्रयास से शुद्ध करके आर्य बनाया गया। धर्म के द्वार विधर्मियों के लिए खुल गये । ऋषि ने स्वयं मुहम्मद उमर नाम के एक मुसलमान को अलखधारी बनाकर यह मार्ग खोला था ।

आर्यसमाज की कृपा से सैकड़ों ब्राह्मणेतर कुलोत्पन्न व्यक्ति वेदशास्त्र के मर्मज्ञ विद्वान् बनकर चमके। किस किस का यहां नाम लें । ऐसे विद्वानों की सूची में अनेक दलित वर्ग में जन्म पाकर विद्वानों की अग्रिम

पंक्ति में बैठे ।

आर्यसमाज के यशस्वी तपस्वी विद्वान् आचार्य देवप्रकाश जी का जन्म तो एक मुसलमान परिवार में हुआ था ।

आर्यसमाज ने मानव समाज को प्राचीनतम, सर्वथा असाम्प्रदायिक, वैज्ञानिक व सार्वभौमिक अभिवादन 'नमस्ते' दिया है । प्रत्येक व्यक्ति दूसरे से मिलते समय हृदय के समीप हाथों को लाकर शीश नवाकर अपने मस्तिष्क, हृदय व भुजाओं की सर्वशक्तियों से 'नमस्ते' कहकर उसका अभिवादन करता है । सारे देश में आर्यसमाज ने नामों की एकरूपता दी । सार्थक नाम रखने का अभियान चलाया ।

श्री सी०वाई० चिन्तामणि ने ८० वर्ष पूर्व लिखा था–"Where there is a work to do there one does not miss the Arya Samaj." अर्थात् जहां कहीं भी कोई करणीय कार्य है वहां आप आर्यसमाज को अनुपस्थित नहीं पायेंगे । यह कभी आर्यसमाज की पहचान थी। कहीं भूकम्प हो, बाढ़ आये, महामारी व दुष्काल से पीड़ित चीत्कार करें, अनाथों व विधवाओं का करुण क्रन्दन हो, रूढ़ियों कुरीतियों से लोग दुःखी हों, अविद्या व अशिक्षा का घटाटोप अन्धेरा हो, आर्यसमाज के सेवक हर बुराई से लड़ाई लड़ने और पीड़ितों की सेवा के लिए वहां पहुंच जाया करते थे ।

आर्यसमाज ने अनाथालय, विद्यालय गुरुकुल, विधवा आश्रम, हस्पताल औषधालय, गोशालाएँ व व्यायामशालाएँ स्थापित कीं । स्त्रीशिक्षा के लिए संघर्ष किया । बुराइयों

से टक्कर लेते हुए आर्यों के सिर फूटे, जानें गईं, बहिष्कार हुए और अभियोग चले। अस्पृश्यता के विरुद्ध संग्राम करते हुए रोपड़ (पंजाब) के आर्य नेता श्री सोमदेव जी की माता शुद्ध जल के प्राप्त न होने से (बहिष्कार जो था) प्राण छोड़ गई परन्तु आर्य झुके नहीं ।

धर्म-प्रचार करते हुए आर्यों ने कई कीर्तिमान स्थापित किये । श्री पं० शन्तिप्रकाश जी शास्त्रार्थ महारथी ने भविष्य-वाणियों व चमत्कारों की पोल खोलते हुए कादियाँ (पंजाब) में सात घण्टे लगातार भाषण दिया। उस समय विदेशी शासन था । पण्डित जी के हाथों व पाँवों में बेड़ियाँ डाल कर उन्हें कारागार में डाला गया । हाईकोर्ट में वे सम्मान सहित मुक्त किये गये ।

आर्य नेता श्री प्रो० रामसिंह जी ने सत्यार्थप्रकाश पर सिन्ध में लगे प्रतिबन्ध पर छत्ता मदनगोपाल की एक सभा में रात्रि आठ बजे से प्रातः चार बजे तक धाराप्रवाह भाषण का एक नया कीर्तिमान स्थापित किया ।

आर्यसमाज ने अंग्रेज़ों से कई बार टक्कर ली, पटियाला, धौलपुर, भरतपुर, हैदराबाद, मालेरकोटला के शासकों से टक्कर ली । सिन्ध की मुस्लिम लीगी सरकार से टक्कर ली और सर्वत्र विजय प्राप्त की ।

जब आर्यसमाज ने संस्थाओं को साधन न समझकर सर्वस्व मान लिया तो आर्यसमाज निस्तेज होता गया । इतिहास का प्रखर व नग्न सत्य यही है कि आज स्कूल, कालेज, आश्रम आदि आर्यसमाज के लिए सब कुछ हो

गये हैं । आर्यसमाज द्वारा संचालित स्कूलों कालेजों में आर्यपन तो कतई नहीं। यह संचालकों के लिए कमाई का साधन तो अवश्य हैं । चौधर व गद्दियाँ भी इनके कारण हैं । धर्मप्रचार का कार्य शिथिल ही नहीं बन्द सा हो गया है । बाह्य तत्त्व (Foreign matter) इन संस्थाओं व भव्य भवनों के कारण आर्यसमाज में ऐसा घुस चुका है कि आर्यसमाज का स्वरूप ही बदल गया है । इस विषय में यहां अधिक लिखना ठीक नहीं । आर्यसमाज की ७५ वर्ष की सेवाओं व उपलब्धियों को कौन भूल सकता है ?

ऋषि दयानन्द जी के एक महान् शिष्य स्वामी दर्शनानन्द ने घर फूंक तमाशा दिखाते हुए भारत में निःशुल्क शिक्षा का अद्‌भुत परीक्षण किया । ज्वालापुर महाविद्यालय आदि कई गुरुकुल स्थापित किये । आचार्य उदयवीर सरीखा दार्शनिक विद्वान् उन्हीं की देन था । देशवासियों की निष्ठुरता व भोगवाद की अन्धी आंधी के कारण धुन के धनी दर्शनानन्द का सपना धूली-धूसरित हो गया है । आज भारत में शिक्षा भी एक व्यापार बन गया है । ऋषि दयानन्द ने निःशुल्क शिक्षा का विचार दिया था ।

आर्यसमाज के संस्थापक ने अनादि ईश्वर के नित्य अनादि ज्ञान वेदों पर आर्यमसाज की नींव रखी। आशा करनी चाहिए कि वेद के नित्य अनादि सिद्धान्तों के प्रकाश को फैलाने के लिए और पुण्यात्माएँ आगे आयेंगी । जो कोई व्यक्ति या संस्था वेद के शाश्वत सिद्धान्तों के प्रचार का अभियान

चलायेगा, वही ऋषि के प्रचार का अभियान चलायेगा, वही ऋषि दयानन्द का उत्तराधिकारी माना जायेगा । वही आर्यसमाज कहलायेगा ।

***

आठवाँ अध्याय

विदेशों में आर्यसमाज

महर्षि दयानन्द के जीवन-काल में ही पश्चिमी जगत् में आर्यसमाज की चर्चा आरम्भ हो गई थी । ऋषि दयानन्द के पश्चात् मुनिवर पं० गुरुदत्त विद्यार्थी के विचारोत्तेजक साहित्य व लेखों का योरुपीय विद्वानों पर विशेष प्रभाव पड़ा । पं० गुरुदत्त जी का निधन बहुत छोटी आयु में हो गया, इस कारण पश्चिम में वैदिक विचार-धारा के प्रसार की योजना को गहरा धक्का लगा । श्री पं० लेखराम जी अंग्रेज़ी नहीं जानते थे तथापि उनकी लेखनी ने अमरीका में हलचल पैदा की । उनके बलिदान पर एक अमरीकन पत्रिका में उन पर एक लेख भी छपा था । मध्य एशिया में उनके साहित्य ने वैदिक धर्म में विचारशील लोगों की रुचि जगाई ।

१८९३ ई० में शिकागो के विश्व धर्म सम्मेलन में वैदिक धर्म का प्रतिनिधि भेजने के लिए पं० आर्य मुनि जी व पं० लेखराम जी को भेजने का कुछ आर्यों को ध्यान आया । लेख भी छपे परन्तु न तो किसी ने धन-संग्रह किया और न किसी अनुवादक की व्यवस्था की गई । आर्यसमाज

तभी संस्थावाद के कीच बीच में फंसकर भवनों के लिए चन्दा करने की ओर अग्रसर हो रहा था ।

प्रथम वैदिक मिशनरी–

विदेशों में सबसे पहले ऋषि दयानन्द का सन्देश पहुंचाने का सौभाग्य पं० गुरुदत्त की धरती मुलतान डिविज़न के ज़िला मुजफ़्फ़रगढ़ के दो आर्यवीरों को प्राप्त है । वे थे ला० जेन्दाराम व ला० सिद्धूराम । ये दोनों कोर्ट में Petition writers (प्रार्थना पत्र) लिखते थे । विद्वान् उपदेशक न होते हुए भी अपने पुरुषार्थ से, मिशनरी भावना से १८९३ के उस विश्व धर्म सम्मेलन के अवसर पर अमरीका पहुंच गये । जेंदाराम वहां जाकर डाक्टर भी बन गये। पं० गुरुदत्त की पुस्तकें रटकर वहां भाषण देकर मान सम्मान पाया । डॉ० जेंदाराम जी ने वहां एक मासिक पत्र भी निकाला । इनके प्रभाव व प्रेरणा से एक अमरीकन प्रकाशक ने पं० गुरुदत्त जी के उपनिषदों का एक संस्करण छापा ।

श्री लक्ष्मीनारायण बैरिस्टर व ला० रोशनलाल बैरिस्टर ने १८८७ ई० में लण्डन में आर्यसमाज की स्थापना करके अद्भुत कार्य किया। वे दोनों उच्च शिक्षा के लिए लण्डन गये थे । मैक्समूलर महोदय ने ७।७।१८८८ ई० को श्री लक्ष्मीनारायण को एक महत्त्वपूर्ण पत्र लिखकर आर्यसमाज के आन्दोलन से अपनी सहानुभूति व रुचि की अभिव्यक्ति करके अपनी बदली हुई मानसिकता का परिचय दिया ।

इससे पूर्व स्काटलैण्ड के पीटर डेवडसन ने स्वामी दयानन्द जी महाराज को सूचना दी कि मैंने मांस-भक्षण व सुरापान का परित्याग कर दिया है । उसने ऋषि जी से योगाभ्यास सीखने की इच्छा प्रकट की थी ।

बीसवीं शताब्दी में वैदिक विचारधारा को पहुंचाने व फैलाने का एक विलक्षण प्रयास प्राणपुरी नाम के एक तेजस्वी प्रतापी आजन्म ब्रह्मचारी ने किया। संन्यास धारण करके यह संन्यासी किसी सभा संस्था की सहायता के बिना ही दक्षिण पूर्वी एशिया के देशों में भ्रमणार्थ निकल गये । आपने १९०१ से १९०४ ई० तक लगभग साढ़े तीन वर्ष मलेशिया, जापान व चीन आदि देशों में अपने ढंग से धर्मप्रचार किया । यही प्राणपुरी आगे चलकर स्वामी स्वतन्त्रानन्द के नाम से आर्य-जगत् के सर्वमान्य नेता के रूप में जाने जाने लगे ।

इनके पश्चात् देवता स्वरूप भाई परमानन्द जी १९०५ ई० में अफ़्रीका प्रचारार्थ गये । उनके तप, त्याग, लगन व योग्यता का वहां जाकर बसे भारतीयों पर गहरा प्रभाव पड़ा । भाई जी के पश्चात् तो अफ्रीका, योरुप, अमरीका व एशिया महाद्वीप के देशों में जहां जहां भी भारतीय श्रमिक, व्यापारी व विद्यार्थी पहुंचे, वहां उन सब देशों में आर्यसमाज के मिशनरी वेद-प्रचार के लिए पहुंचे।

इस पुस्तक में विदेशों में आर्यसमाज के प्रचार का इतिहास देना तो सम्भव नहीं है । विदेशों में ऋषि दयानन्द के सन्देश को पहुंचाने व सुनाने वाले कुछ बहुत विशेष

व्यक्तियों का नामोल्लेख ही किया जा सकता है । आर्यसमाज के धर्मयोद्धा यदि वैदिक धर्मप्रचार के लिए विदेशों में न जाते तो वहां जाकर बसे हुए भारतीय मूल के व्यक्ति निश्चित रूप से ईसाई व मुसलमान बन जाते। आर्यसमाज विदेशियों को तो अपने संगठन का अंग बनाने में विफल ही रहा परन्तु मारिशस व फ़िजी आदि देशों में बसे भारतीय आज भी वैदिक धर्मी हैं तो इसका सारा श्रेय आर्यसमाज के उन मिशनरियों को जाता है जिन्होंने बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में वहां वैदिक नाद बजाया। साधनों के अभाव में डॉ० चिरञ्जीव जी भारद्वाज, स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज, देवतास्वरूप भाई परमानन्द जी महाराज व मेहता जैमिनि (स्वामी ज्ञानानन्द जी महाराज) ने इस पथ पर क्या-क्या दुःख कष्ट झेले इन्हें आज कौन जानता है ।

दक्षिण अफ्रीका में वैदिक धर्म के मिशनरियों को आमन्त्रित करने वाले महाशय मोहकमचन्द जी वर्मा को कौन भूल सकता है । वह पसरूर ज़िला स्यालकोट के मूल निवासी थे । रक्तसाक्षी पं० लेखराम के व्याख्यान सुनकर दृढ़ वैदिकधर्मी बने थे । पूर्वी अफ़्रीका में आर्यसमाज के प्रचार व संगठन के लिए महात्मा बद्रीनाथ की सेवाएँ अविस्मरणीय रहेंगी । वे गुरु विरजानन्द की जन्म-स्थली करतापुर (पंजाब) में जन्मे थे । पं० लेखराम जी व महात्मा मुन्शीराम जी के उपदेश सुनकर सच्चे व पक्के आर्य बन गये ।

मारिशस में डॉ० मणिलाल बैरिस्टर की सेवाएँ स्वर्ण-अक्षरों में लिखने योग्य हैं। महाशय तोताराम, श्री जगमोहनसिंह, गुरुप्रसाद जी, श्री मस्तासिंह व महाशय प्रतापसिंह मारिशस में आर्यसमाज की नींव के पत्थर कहे जा सकते हैं।

अब जिन विद्वान् मिशनरियों ने विदेशों में वैदिक धर्म की पताका फहराई उनमें से कुछ मूर्धन्य महापुरुषों का नामोल्लेख करके हम इस चर्चा को समाप्त करेंगे। स्थान अभाव के कारण सब का नाम तो दिया जाना सम्भव ही नहीं। जीव की अल्पज्ञता के कारण भी किसी महत्वपूर्ण व्यक्ति का नाम छूट सकता है। यहां यह भी लिखना आवश्यक है कि देश के स्वतन्त्र होने के पश्चात् तो विदेशों में धर्मप्रचार के नाम पर अनेक सज्जन गये व जाते रहते हैं परन्तु हमें यह स्वीकार करने में तनिक भी संकोच नहीं कि अब आर्यसमाज के पास भाई परमानन्द जी, स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी, मेहता जैमिनी जी, पं० अयोध्याप्रसाद जी, पं० चमूपति जी, स्वामी अभेदानन्द जी, पं० गंगाप्रसाद जी उपाध्याय व स्वामी सत्यप्रकाश जी सरीखे प्रतिभासम्पन्न विद्वान् मिशनरियों का अभाव है।

मेहता जैमिनि जी को हम विदेशों में वैदिक धर्म-प्रचार करने वाले आर्य मिशनरियों में Prince of The Aryan Preachers आर्योपदेशकों का राजकुमार कह सकते हैं। जहां कहीं एक भी भारतीय कार्यरत था, वह उस देश व उस नगर में ऋषि का सन्देश लेकर पहुच गये। उनका

स्वाध्याय विस्तृत व गहन था । कई भाषाएँ जानते थे । उनकी व्याख्यान-शैली रोचक व निराली थी । स्वतः प्रेरणा से विदेशों में प्रचारार्थ अनेक बार गये । सब महाद्वीपों में गये ।

स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज तीन बार पूर्वी अफ़्रीका गये । मारिशस व बर्मा में भी आपने प्रचार किया। श्री भाई परमानन्द जी ने दक्षिण अफ़्रीका, बर्मा व अमरीका तथा इंगलैण्ड में प्रचार किया । डॉ० चिरञ्जीव जी ने अपने अध्ययन-काल में भी इंगलैण्ड में वेद प्रचार के लिए अदम्य उत्साह दिखाया । डॉ० दौलतराम जी आठ वर्ष तक जर्मनी व कुछ अन्य योरुपीय देशों में रहे । आपने श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज के सहयोग से सत्यार्थप्रकाश का जर्मन भाषा में अनुवाद करवाकर छपवा दिया । स्वामी शंकरानन्द जी ने भी इंग्लैण्ड अमरीका में प्रचार किया। आपका अंग्रेज़ी भाषा पर अच्छा अधिकार था। तेजस्वी संन्यासी थे । डॉ० ख़ानचन्द देव जी अमरीका में उच्चशिक्षा प्राप्त करने गये । आपने वहां कई नगरों में वैदिक धर्म पर व्याख्यान दिये ।

पं० ईश्वरचन्द्र जी विद्यालङ्कार, महाशय सुखदयाल (स्वामी सत्यदेव परिव्राजक) अमरीका पढ़ने गये । पादरियों से वहाँ वार्तालाप व शास्त्रार्थ भी किये । डॉ० लक्ष्मीनारायण बैरिस्टर ने शिकागो व न्यूयार्क में प्रचार किया । आप ऋषि के जीवन काल में ही आर्य बन गये थे । डॉ० केशवदेव शास्त्री ने तीन वर्ष अमरीका में रहकर

वैदिक धर्म की धूम मचा दी । प्रेस में भी इनकी बड़ी चर्चा होती रही । आप का तथा भूमण्डल प्रचारक मेहता जैमिनि का गृहनगर एक ही था ।

सन् १९३३ में सार्वदेशिक सभा ने शिकागो के विश्व धर्म सम्मेलन में श्री डा० बालकृष्ण जी कोल्हापुर व पं० अयोध्याप्रसाद जी को भेजा । डा० बालकृष्ण जी तो सम्मेलन के पश्चात् भारत लौट आये परन्तु पं० अयोध्याप्रसाद जी दक्षिण अमरीका में प्रचार के लिए रुक गये । पं० सत्याचरण जी एम० ए० इनके पश्चात् अमरीका प्रचारार्थ भेजे गये ।

ला० लाजपतराय जी अपने निष्कासन के दूसरे काल में लगभग तीन वर्ष तक अमरीका में रहे परन्तु उन्होंने वहाँ वैदिक धर्मप्रचार में कोई रुचि न ली । पं० पूर्णानन्द जी, पं० चमूपति जी, पं० बुद्धदेव विद्यालंकार, आचार्य रामदेव जी, ठाकुर प्रवीणसिंह, पं० बालकृष्ण मुम्बई, पं० रलाराम, महात्मा आनन्दभिक्षु जी, स्वामी ध्रुवानन्द जी, स्वामी अभेदानन्द जी, स्वामी मंगलानन्द जी, पं० सत्यव्रत सिद्धान्तालङ्कार, पं० महारानी शंकर जी व डा० भगतराम जी अफ़्रीका में प्रचारार्थ गये । डॉ० भगतराम जी तो योरुप के भी कई देशों में प्रचारार्थ गये । वे बहुत प्रभावशाली वक्ता थे । मेहता रामचन्द्र शास्त्री की वेद-प्रवचन शैली का अफ़्रीका में बहुत गहरा प्रभाव पड़ा ।

आचार्य चमूपति जी का अफ़्रीका में माधवाचार्य जी से एक शास्त्रार्थ हुआ । आर्यसमाज के विरोधी भी

आचार्य चमूपति का उत्तर सुनकर मुग्ध हो गये ।

पं० गंगाप्रसाद जी उपाध्याय व उनके सुपुत्र डा० सत्यप्रकाश (स्वामी सत्यप्रकाश जी) ने भी विदेशों में वेद-प्रचार किया । स्वामी सत्यप्रकाश जी तो कई बार कई देशों में गये ।

पिछले कुछ वर्षों में जो विद्वान् प्रचारार्थ विदेशों में गये उनमें आचार्य वैद्यनाथ, स्वामी जगदीश्वरानन्द व स्वामी दीक्षानन्द जी का नाम उल्लेखनीय है । श्री महात्मा आनन्द स्वामी जी महाराज भक्तिरस की गंगा को प्रवाहित करने कई देशों में गये । आपके त्याग, आकर्षक व्यक्तित्व, मधुर स्वभाव का सर्वत्र गहरा प्रभाव पड़ा । आप अमरीका, योरुप व अफ़्रीका महाद्वीपों में एक से अधिक बार आमन्त्रित किये गये । एशिया के भी कुछ देशों में प्रचार किया ।

हालैण्ड में कई आर्यसमाजें हैं । प्रचार भी अच्छा है । कई गुरुकुलों के स्नातक वहाँ बस गये हैं । वहाँ की भाषा में आर्य साहित्य का प्रकाशन हो रहा है । गुरुकुल गौतम नगर, नई देहली से तो कोई न कोई विद्वान् वहाँ जाता ही रहता है ।

विदेशी भाषाओं में आर्यसमाज का साहित्य न होने से भी आर्यसमाज विदेशियों तक नहीं पहुंच सका । आर्यसमाज के दूरदर्शी विद्वान् नेता पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय ने अर्द्धशताब्दी पूर्व आर्य जनता का ध्यान इस ओर आकृष्ट किया । आप ने प्रचार व साहित्य की समस्या पर सैकड़ों

लेख लिखे परन्तु संगठन का ढांचा ही कुछ ऐसा हो गया और नेतृत्व ऐसे लोगों के हाथ में आ गया जो न गहरा सोच सकते हैं और न दूर तक देख सकते हैं । अतः इस दिशा में कोई ठोस प्रगति हो नहीं पा रही । लोगों में तो सर्वत्र भूख भी है और वेदामृत से प्यास बुझाने की चाह भी है । जिस दिन आर्यसमाज में कोई नया श्रद्धानन्द, नया मेहता जैमिनि व कोई दूसरा गंगाप्रसाद उपाध्याय जन्म ले लेगा तो फिर वेद-प्रचार के आन्दोलन को देश विदेश में कोई नहीं रोक सकेगा ।